# अमर शहीद
# भगतसिंह

# अमर शहीद भगतसिंह

महेश शर्मा

प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान,
694-बी (निकट अजय मार्केट), चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006
सर्वाधिकार : सुरक्षित / संस्करण : 2022 / मूल्य : तीन सौ रुपए
मुद्रक : आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली ISBN 978-93-83111-93-0

**AMAR SHAHEED BHAGAT SINGH**
*by* Shri Mahesh Sharma ₹ 300.00
Published by **PRATIBHA PRATISHTHAN**
694-B (Near Ajay Market), Chawri Bazar, Delhi-110006

# विषय-सूची


| | | |
|---|---|---|
| 1. | गौरवशाली इतिहास | 7 |
| 2. | भागाँवाला भगत | 17 |
| 3. | डी.ए.वी. में कायाकल्प | 22 |
| 4. | गोली खाएँगे नहीं, मारेंगे | 28 |
| 5. | गरम दल की ओर | 36 |
| 6. | क्रांति के बीज | 42 |
| 7. | गृह-त्याग | 49 |
| 8. | छद्म वेश | 55 |
| 9. | घर वापसी | 60 |
| 10. | आत्माहुति का प्रण | 66 |
| 11. | काकोरी कांड | 71 |
| 12. | साइमन कमीशन | 78 |
| 13. | असेंबली में बम | 89 |
| 14. | इनकलाब जिंदाबाद | 98 |
| 15. | सरफरोशी की तमन्ना | 107 |
| 16. | मृत्युदंड | 116 |
| 17. | मुश्ते-खाक | 123 |
| 18. | बलिदान | 128 |
| 19. | शहीदों की चिताओं पर | 132 |
| 20. | कुछ संस्मरण | 136 |
| 21. | भगतसिंह ने कहा था | 142 |
| | *साभार* | *144* |

*हवा में रहेगी मेरे खयाल की बिजली,*
*ये मुश्ते-खाक है फानी; रहे-रहे, न रहे।*

अध्याय 1

# गौरवशाली इतिहास

पंजाब—पाँच पावन नदियों के किनारे बसा भारत का सबसे समृद्ध प्रांत। वह प्रांत, जहाँ की उपजाऊ भूमि विभिन्न प्रकार के अन्नों को पैदा कर भारतवर्ष के अधिकांश निवासियों का भरण-पोषण करती है। हरी-भरी लहराती फसलों से युक्त खेत; कल-कल बहती नदियों का मीठा पानी; रंग-बिरंगे धोती-कुरते के साथ तुर्रे वाली पगड़ी की पारंपरिक वेशभूषा पहने लंबे-चौड़े बलिष्ठ युवक; चुनरी की ओट से लजातीं-शरमातीं युवतियाँ; प्रेम, संतोष, धैर्य, संयम, त्याग, स्वाभिमान एवं समृद्धि का संदेश देती हुई पंजाबी सभ्यता और संस्कृति— यद्यपि इन बातों से पंजाब का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है, परंतु पंजाब की पहचान केवल इन्हीं गिनी-चुनी वस्तुओं तक सीमित नहीं है। इसकी पहचान में उन वीरों का अगाध शौर्य भी सम्मिलित है, जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए हजारों वर्षों से प्रयत्नशील रहे हैं। इसकी मिट्टी से आनेवाली सोंधी-सोंधी खुशबू में उन देशभक्तों के खून की खुशबू भी मिली हुई है, जिन्होंने देश पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

इस प्रांत की आबोहवा ने यहाँ के निवासियों को वीरता और बलिदान का गुण विरासत में दिया है। चाहे बात मुगलकाल की हो, स्वतंत्रता संग्राम की हो या फिर बँटवारे की— हर बार अस्तित्व की लड़ाई में इस प्रांत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कहते हैं कि स्वतंत्रता संग्राम में सबसे अधिक क्रांतिकारी इस धरती की कोख से जनमे थे। स्थिति यह थी कि हर घर का कोई-न-कोई पुरुष क्रांति की अग्नि में धधकने को उद्यत था। यहाँ की वीरांगनाओं ने अपने सुखों एवं खुशियों का दमन करते हुए पुत्रों, पतियों और भाइयों को देश पर कुर्बान होने के लिए अर्पित कर दिया। इन क्रांतिकारियों में न तो जीवन के लिए उत्साह था और न ही सुखों की आकांक्षा। उनके मन में केवल एक ही चाह थी, जीवन का एक ही लक्ष्य था— 'भारत माता को गुलामी की बेड़ियों से आजाद

करवाना'। उनके मुख से केवल यही निकलता था–

> ''सिर पर बाँधे हैं कफन, हाथों में मौत का परवाना है।
> जिंदा रहना लक्ष्य नहीं, माँ को आजाद करवाना है।''

## पारिवारिक पृष्ठभूमि

यदि इतिहास का गहन अध्ययन किया जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वतंत्रता-पूर्व पंजाब का अधिकांश भाग सुदूर सिंध प्रांत तक फैला हुआ था। विभाजन के उपरांत यह क्षेत्र पाकिस्तान की सीमा में चला गया। इसी पंजाब के लायलपुर जिले में 'बंगा' नामक एक छोटा सा गाँव था। यह गाँव खालसा सरदारों से संबंधित था। इनका इतिहास बड़ा ही शौर्य-युक्त और गौरवशाली था। इनके पूर्वज महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में 'खालसा सरदार' के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी सहायता से ही महाराजा रणजीत सिंह ने सिख साम्राज्य का विस्तार किया। इस दौरान उन्होंने अनेक राज्यों के साथ-साथ शक्तिशाली पठानों को भी धूल चटाई। इतना ही नहीं, अंग्रेजों के विरुद्ध भी उन्होंने वीरता और शौर्य का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया था। अंग्रेजों की कुदृष्टि आरंभ से ही धन-धान्य से परिपूर्ण पंजाब पर थी। वे उसे हड़पना चाहते थे। परंतु सिक्खों के बढ़ते प्रभाव से भी वे भली-भाँति परिचित थे, अत: वे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। पठानों से युद्ध के बाद सिक्खों को कमजोर समझकर अंतत: उन्होंने पंजाब पर आक्रमण कर दिया। लेकिन सिक्खों की शक्ति का गलत आकलन करके उन्होंने भारी भूल की थी। सिक्खों के रहते पंजाब को जीतना अंग्रेजों के लिए असंभव था। महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में खालसा सरदारों ने अंग्रेजों को नाकों चने चबाने के लिए विवश कर दिया था।

सरदार अर्जुनसिंह इन्हीं महान् खालसा सरदारों के वंशज थे। वे परिवार सहित बंगा गाँव में रहते थे। सरदार अर्जुनसिंह– जैसाकि उनके खून में शामिल था– क्रांतिकारी विचारों से ओत-प्रोत और स्वतंत्र चिंतन के पक्षधर थे। देशभक्ति और वीरता का गुण उन्हें विरासत में मिला था। यही कारण था कि वे निडर होकर समाज में व्याप्त सड़ी-गली पुरानी मान्यताओं और कुरीतियों का विरोध करते थे। उनका कहना था कि ''संसार में मनुष्य की पहचान उसकी धार्मिक, सामाजिक या आर्थिक स्थिति से नहीं, अपितु उसके सत्कर्मों और गुणों से होनी चाहिए। मानवता ही आपसी प्रेम, स्नेह और सौहार्दपूर्ण व्यवहार को उत्पन्न करती है। इसलिए मनुष्य को केवल इसी का अनुसरण करना चाहिए।'' इन्हीं प्रगतिवादी

विचारों के कारण अन्य लोगों के बीच उनकी विद्वत्ता की धाक जम गई थी।

सरदार अर्जुनसिंह मुख्यत: खेती-बाड़ी करके परिवार का भरण-पोषण करते थे। समय बचने पर छोटे-मोटे रोगों का उपचार करना भी उनकी दिनचर्या में सम्मिलित था। उनका विवाह जयकौर के साथ हुआ, जो स्वाभिमानी, सहनशील, प्रगतिशील विचारों तथा देशभक्ति से ओत-प्रोत महिला थीं। पति की भाँति उनमें भी राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। इस प्रकार दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक बनकर राष्ट्र-सेवा में लीन थे।

विवाह के बाद जयकौर ने तीनों पुत्रों— सरदार किशनसिंह, सरदार अजीतसिंह और सरदार स्वर्णसिंह को जन्म दिया। यह ईश्वरीय वरदान ही था कि तीनों बालकों में पिता के सद्‌गुणों का यथोचित समावेश था। निर्भीकता, स्पष्टवादिता, मानवता और देशभक्ति उन्हें विरासत में मिली थी। आखिरकार सिंह के पुत्र सिंह ही हो सकते थे।

## जट सिख से आर्यसमाजी

यद्यपि तत्कालीन समाज से अनेक कुरीतियाँ विदा ले चुकी थीं, लेकिन फिर भी ऐसी अनेक सामाजिक मान्यताएँ एवं रीति-रिवाज प्रचलित थे, जिनसे समाज का प्रत्येक वर्ग त्रस्त था। ऐसे समय में स्वामी दयानंद सरस्वती ने समाज-उत्थान के उद्‌देश्य से 'आर्यसमाज' की स्थापना की। प्राचीनकाल से प्रचलित सामाजिक बुराइयों को समाप्त कर समाज को उनसे उबारना ही इसका लक्ष्य था। समाज-सुधार का समर्थन करनेवाले सरदार अर्जुनसिंह आरंभ से ही 'आर्यसमाज' की नीतियों एवं कार्यों से अत्यंत प्रभावित थे। वे इसके विषय में संपूर्ण जानकारी एकत्रित करने लगे। इसी बीच उनकी भेंट स्वामी दयानंद सरस्वती से हुई। उनके प्रगतिवादी विचारों ने अर्जुनसिंह पर गहरा असर डाला और उन्होंने आर्यसमाजी बनने का निर्णय ले लिया।

एक जट सिख ने आर्यसमाजी बनने का निश्चय किया था— रूढ़िवादी समाज के पोषकों को यह बात भला कैसे स्वीकार हो सकती थी। उन्होंने इसका पुरजोर विरोध किया। अर्जुनसिंह पर उनके समुदाय द्वारा दबाव डाला गया। यहाँ तक कि उनके सामाजिक बहिष्कार की धमकी दी गई। लेकिन एक सच्चा सिक्ख जो निश्चय कर लेता है, वह पत्थर की लकीर हो जाता है। फिर भला अर्जुनसिंह पीछे कहाँ हटने वाले थे! समाज के विरोध ने उनके निर्णय को कमजोर करने की अपेक्षा दृढ़ता ही प्रदान की। उन्होंने परिस्थितियों का सामना

करने के लिए कमर कस ली। उनकी इस दृढ़ता ने स्वामी दयानंद सरस्वती को भी अत्यंत प्रभावित किया। यही कारण था कि उन्होंने स्वयं इस विद्रोही का जनेऊ संस्कार कर दीक्षा प्रदान की।

इस प्रकार सरदार अर्जुनसिंह कट्टर आर्यसमाजी हो गए। उन्होंने आर्यसमाज का सारा उपलब्ध साहित्य पढ़ डाला। इतना ही नहीं, अब वे इस संदर्भ में व्याख्यान भी देने लगे थे। उनके भाषण इतने सारगर्भित और मर्मस्पर्शी होते थे कि श्रोतागण सहज ही उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे।

## भाइयों का विरोध

उन दिनों ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी दिखाने तथा जी-हुजूरी करके सामाजिक एवं आर्थिक लाभ उठाने की परंपरा चल पड़ी थी। चापलूसों की यह फौज शासन चलाने में न केवल सरकार की मदद करती थी, बल्कि क्रांतिकारी एवं विरोधी गतिविधियों की जानकारी भी उपलब्ध करवाती थी। अंग्रेज अधिकारी भी ऐसे चापलूसों की हरसंभव सहायता करके उनका स्वयं के लिए प्रयोग करते थे। यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो ब्रिटिश सरकार की फूट डालनेवाली नीति के चलते सगे भाई भी परस्पर शत्रु हो गए थे। उनका एकमात्र ध्येय ब्रिटिश सरकार के निकटतम सहयोगी बनकर लाभ प्राप्त करना था। इसके लिए वे किसी का भी अहित करने या अपने सगे-संबंधियों का विरोध करने से भी पीछे नहीं हटते थे। अर्जुनसिंह के दोनों भाई— सरदार बहादुरसिंह और दिलबाग सिंह— इसके सटीक उदाहरण थे। जहाँ एक ओर अर्जुनसिंह सरकार की नीतियों के कट्टर विरोधी थे, वहीं दूसरी ओर उनके भाई ब्रिटिश सरकार के समर्थक थे। उनकी दृष्टि में सरकार का विरोध करना सबसे बड़ी मूर्खता थी। चापलूसी और जी-हुजूरी के बल पर कुछ ही दिनों में उन्होंने अतुल्य धन कमा लिया। उनकी गिनती धनी लोगों में होने लगी।

आर्यसमाजी बनने के बाद अर्जुनसिंह ब्रिटिश सरकार की अनुचित नीतियों का खुलकर विरोध करने लगे। उनकी यह सरकार-विरोधी विचारधारा बहादुर सिंह और दिलबाग सिंह को फूटी आँख नहीं सुहाती थी। अत: एक दिन उन्होंने अर्जुनसिंह को समझाते हुए कहा, ''अर्जुन, सरकार का विरोध करना तुम जैसे परिवारवालों को शोभा नहीं देता। तुम्हारी पत्नी है, तीन बच्चे हैं। उनकी चिंता छोड़कर तुम क्यों इधर-उधर भटक रहे हो? यदि किसी दिन सरकार ने सख्त कार्रवाई कर दी तो जमीन और घर से हाथ धोना पड़ जाएगा। अच्छा यही है कि अंग्रेज अधिकारियों की कृपा प्राप्त करो और अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाओ।''

अर्जुनसिंह शांतिपूर्वक भाइयों की बातें सुन रहे थे। सहसा वे गंभीर होकर बोले, ''भाई साहब, मेरी नसों में सच्चे खालसा सरदारों का खून दौड़ रहा है। यह सिर वाहेगुरु के आगे झुक सकता है, परंतु ब्रिटिश सरकार के सामने कभी नहीं झुक सकता। अगर इसके झुकने की स्थिति आ गई तो मैं सिर कटवाना ज्यादा पसंद करूँगा। आप लोग मेरी और मेरे परिवार की चिंता मत कीजिए। उनके नसीब में जो लिखा है, वही होगा। मैं अपने या अपने परिवार के लाभ के लिए अनुचित का साथ कदापि नहीं दे सकता।''

''अर्जुन, एक बार फिर सोच ले। यह समय जज्बातों से नहीं, दिमाग से काम लेने का है। तुम्हारी यह व्यर्थ की जिद तुम्हें कहीं का नहीं छोड़ेगी। अभी भी मान जा और हमारे साथ मिलकर जीवन के सारे सुख भोग। बीता हुआ समय लौटकर नहीं आता। इसलिए अभी से अपने भविष्य को सँवार ले।'' बहादुर सिंह ने आखिरी बार समझाने का प्रयास किया।

''सरदार अपना निर्णय बार-बार नहीं बदलते और मैं अपना निर्णय सुना चुका हूँ। गुलामी की मीठी रोटी खाने के बजाय भारत माता की सेवा करते हुए भूखे रहना मुझे मंजूर है। इसके लिए मैं बड़े-से-बड़ा बलिदान देने से भी पीछे नहीं हटूँगा, फिर चाहे वह मेरा परिवार ही क्यों न हो।'' यह कहकर अर्जुन सिंह तेज कदमों से बाहर की ओर निकल गए।

''मैंने इससे बड़ा मूर्ख और जिद्दी नहीं देखा। इसे समझाना बेकार है। यह अपने परिवार का सर्वनाश करके ही मानेगा।'' दिलबाग ने धीरे से कहा।

''हमारी बात न मानने पर एक दिन इसे पछतावा जरूर होगा। देखते हैं, कब तक इसका यह जोश कायम रहता है।'' बहादुर सिंह ने कटुता से कहा।

मूर्ख और जिद्दी— शायद मातृभूमि के लिए सर्वस्व न्योछावर को उद्यत मतवाले क्रांतिकारियों के लिए यही सर्वोत्तम सम्मान था।

सरदार अर्जुन सिंह ने जो कहा था, उस पर वे जीवन भर अडिग रहे। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन मातृभूमि के चरणों में समर्पित कर दिया। तत्कालीन समाज में उनकी तुलना उस सिंह से की जाती थी, जो भूखा तो रह सकता था, लेकिन गुलामी की बेड़ियाँ उसे स्वीकार्य नहीं थीं। वे अपने व्याख्यानों एवं क्रांतिकारी गतिविधियों द्वारा सरकार की अनुचित एवं दमनकारी नीतियों का पुरजोर विरोध करते रहे। उनके इस कार्य में उनकी पत्नी जयकौर ने भी भरपूर साथ दिया। उन्होंने अर्जुन सिंह के मार्ग को कभी अवरुद्ध नहीं किया, बल्कि सबल बनकर हमेशा कंधे-से-कंधा मिलाकर चलीं। घर का पूरा वातावरण

देशभक्ति और क्रांतिकारी विचारधाराओं से ओत-प्रोत था। यही कारण था कि अर्जुन सिंह के तीनों पुत्र भी उन्हीं के प्रतिरूप बने।

## सरदार किशनसिंह

सरदार अर्जुन सिंह के सबसे बड़े पुत्र किशनसिंह थे। पिता के समान वे भी राजनीतिक जीवन की अपेक्षा सार्वजनिक जीवन में अधिक सक्रिय थे। महात्मा हंसराज के साथ उन्होंने अनेक सार्वजनिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। राष्ट्र-सेवा और जन-सेवा– उनके जीवन के ये प्रमुख उद्देश्य थे। नेता बनने की अपेक्षा उन्हें सेवक बनकर कार्य करना अधिक प्रिय था। वर्ष 1898 में विदर्भ में भयंकर अकाल पड़ा; लोग भूख से मरने लगे। वहाँ के लोगों ने सहायता की गुहार की। लेकिन सरकार ने उनकी बात सुनी-अनसुनी कर दी। ऐसे में सरदार किशनसिंह अपने सहयोगियों के साथ यथासंभव सहायता लेकर विदर्भ गए। इतना ही नहीं, लौटते समय वे अपने साथ पचास अनाथ बच्चों को फिरोजपुर ले आए और उनके रहने के लिए वहाँ एक अनाथालय की स्थापना की।

किशनसिंह में गजब की दूरदर्शिता और किसी को परखने की अद्‍भुत शक्ति थी। किसी के भी मनोभावों को सहजता से जान-समझ लेना उन्हें भली-भाँति आता था। इसी संदर्भ में एक घटना अत्यंत उल्लेखनीय है। क्रांतिकारी शचींद्रनाथ सान्याल और किशनसिंह में अगाध मैत्री भाव था। वे यदा-कदा परामर्श हेतु किशनसिंह के पास आते रहते थे। एक बार शचींद्रनाथ अपने साथ एक युवक को लेकर आए। उसका नाम विभूति था। लेकिन बातचीत के दौरान किशनसिंह की पारखी दृष्टि ने विभूति के मनोभावों को जान लिया।

वे शचींद्रनाथ को एक ओर ले गए और उन्हें सतर्क करते हुए बोले, ''शचींद्रजी, मेरे विचार में बिना जाँच-परख के इसपर विश्वास करना ठीक नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि हमें मुँह की खानी पड़े।''

शचींद्रनाथ थोड़े विस्मित होकर बोले, ''यह आप क्या कह रहे हैं, सरदारजी? यह पिछले कुछ दिनों से लगातार मेरे साथ है। लेकिन अभी तक मैंने इसके व्यवहार में कोई भी संदिग्ध बात नहीं देखी।''

''हो सकता है, आप ठीक कह रहे हों। लेकिन मेरा मन इसपर विश्वास करने को नहीं मानता। इसमें मुझे वह जोश और उत्साह दिखाई नहीं देता, जो किसी देशभक्त में होना चाहिए। मुझे बार-बार लग रहा है कि एक दिन यह

अवश्य विश्वासघात करेगा।'' यह कहकर किशनसिंह ने अपनी बात समाप्त कर दी।

शचींद्रनाथ ने उनकी बात को हँसी में टाल दिया और वहाँ से चले गए।

कुछ दिन ही बीते थे कि किशनसिंह की बात सत्य हो गई। बनारस षड्यंत्र में सरकार ने क्रांतिकारियों को बंदी बनाकर उन पर मुकदमा चलाया। इसमें विभूति ने सरकारी गवाह बनकर अपने साथियों के साथ विश्वासघात किया। शचींद्रनाथ बुरी तरह से टूट गए। किशनसिंह का एक-एक वाक्य उन्हें याद आने लगा। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। कई क्रांतिकारियों को मृत्युदंड मिला तो कई लोगों को कठोर कारावास की सजा दी गई। विभूति के इस विश्वासघात का असर गुप्त रूप से चलाए जा रहे आंदोलन पर भी पड़ा। उसने अनेक ऐसे रहस्य उद्घाटित किए, जिससे सरकार ने अपने विरोधियों का सिर कुचल दिया।

सरदार किशनसिंह अंग्रेजों के कितने प्रबल विरोधी थे, इसका पता इसी बात से चलता है कि उन पर 42 बार राजनीतिक मुकदमे चलाए गए। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने जीवन के लगभग ढाई वर्ष जेल में व्यतीत किए, जबकि दो वर्ष की समयावधि नजरबंद रहकर बिताई।

## विवाह

वर्ष 1898 में किशनसिंह का विवाह सिख परिवार की एक अत्यंत सुशील, सुसंस्कृत और गुणी युवती से हुआ। युवती का नाम था— विद्यावती। यद्यपि दूल्हा-दुलहन सिख परिवार से संबंधित थे, तथापि उनका विवाह विशुद्ध आर्यसमाजी रीतियों के अनुरूप हुआ। दो वर्ष के उपरांत गौने की रस्म पूर्ण की गई तथा अनेक सपनों को सँजोए विद्यावती ससुराल पहुँचीं।

आँगन में प्रथम कदम रखते ही विद्यावती को घर के क्रांतिकारी और देशभक्ति से युक्त वातावरण का ज्ञान हो गया। ब्रिटिश सरकार की अनीतियों और अत्याचारों को वह बचपन से ही देखती-सुनती आई थीं। यही कारण था कि वह भी अंग्रेज-विरोधी भावनाओं से ओत-प्रोत थीं। अन्य युवतियों की तरह उन्होंने कभी धनवान् या सुंदर राजकुमार की कल्पना नहीं की। उनके सपनों का राजकुमार सच्चा, सीधा, ईमानदार और देशभक्त था। किशनसिंह के रूप में उनका स्वप्न साकार हो उठा। उन्होंने इसे ईश्वर-कृपा समझा और जी-जान से ससुराल की सेवा में जुट गई। कहा जाता है कि विद्यावती को चार बार साँप ने

काटा था, लेकिन उनका कभी अहित नहीं हुआ। इस तरह उनके बारे में प्रसिद्ध हो गया कि जहर उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

## बंग-भंग की त्रासदी

सन् 1857 की सशस्त्र क्रांति के बाद से अंग्रेजों के विरुद्ध विरोध की एक लहर चल पड़ी थी। यह विरोध कुछ स्थानों तक सीमित न होकर सारे भारत में समान रूप से व्याप्त था। अब तक भारतीय जनमानस ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों एवं अत्याचारों से पीड़ित होकर असहाय-सा था। लेकिन स्वतंत्रता-सेनानियों एवं क्रांतिकारियों के नेतृत्त्व में वह एकजुट होकर अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। इस महासमर में लगभग सभी धर्मों के लोग सम्मिलित थे। लोगों ने जात-पाँत, छूत-अछूत, अमीर-गरीब, साक्षर-निरक्षर आदि के भेदभावों को एक ओर रखकर स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए कमर कस ली थी।

स्थिति दिन-प्रतिदिन विकट होती जा रही थी। जन-आंदोलन का व्यापक होता रूप ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ाने के लिए पर्याप्त था। ऐसा लगने लगा था मानो भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अंत निकट आ चुका है। ऐसे में अंग्रेज अधिकारियों ने कूटनीति और कुटिलता का आश्रय लिया। चूँकि आंदोलन में अधिकांशत: हिंदू और मुसलिम– दो प्रमुख समुदाय के लोग सम्मिलित थे, अत: उन्होंने हिंदू-मुसलमानों में दरार डालकर उनकी एकता खंडित करने की योजना बना डाली। उन दिनों बंगाल भारत का ऐसा प्रमुख राज्य था, जो हिंदू और मुसलिम समुदाय का गढ़ था। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने बंगाल के विभाजन का निश्चय किया। उन्हें विश्वास था कि इससे हिंदू-मुसलिम अलग-थलग पड़ जाएँगे और फिर उनकी कमजोरी का लाभ उठाकर अंग्रेज अपनी स्थिति पुन: मजबूत कर लेंगे।

अंतत: लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया। इसे 'बंग-भंग' के नाम से भी जाना जाता है।

बंगाल का विभाजन एक ऐसा भयंकर आघात था, जिसने देश के प्रत्येक नागरिक के अंतर्मन को चोटिल कर दिया था। इससे जन-समुदाय में क्रोध की लहर दौड़ गई। लोग अंग्रेजों की कुटिलता समझ गए। देखते-ही-देखते संपूर्ण भारत में बंग-भंग के विरुद्ध आंदोलन आरंभ हो गए। अनेक जुलूस निकाले गए, आम सभाएँ की गईं, ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में नारे लगाए गए। इसी तरह का एक आंदोलन पंजाब में भी आरंभ हुआ। इसका नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। वे अपने सहयोगियों एवं साधारण लोगों में 'पंजाब केसरी' के नाम से

विख्यात थे। उनके साथ सरदार अर्जुन सिंह के तीनों पुत्र– अजीत सिंह, किशनसिंह और स्वर्ण सिंह भी कंधे-से-कंधा मिलाकर क्रांति की मशाल प्रज्वलित कर रहे थे। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि कुछ ही दिनों में यह आंदोलन फिरोजपुर, रावलपिंडी, सियालकोट, लायलपुर सहित संपूर्ण पंजाब में फैल गया। उनके ओजपूर्ण भाषण सुनकर बूढ़े व्यक्ति भी जोश से भर उठते, नवयुवक आंदोलन में कूद पड़ते। उन्होंने न केवल हिंदुओं बल्कि मुसलिम समुदाय का भी आह्वान किया।

ब्रिटिश सरकार ने जिस उद्देश्य से बंगाल का विभाजन किया था, हिंदू-मुसलिम एकता ने उसे पूरी तरह निष्फल कर दिया। बंग-भंग भी उनकी एकता, प्रेम और भाईचारे में दरार नहीं डाल सका। इसके विपरीत वे अधिक निकट आ गए और पूरी शक्ति से अंग्रेजों का विरोध करने लगे। अंततः सरकार ने सभी नीतियों को एक ओर रखकर दमन का सहारा लिया। अनेक कानूनों को लागू करके आंदोलन से जुड़े कार्यों को प्रतिबंधित कर दिया गया। स्थिति इतनी बिगड़ गई कि शांतिपूर्वक किए जानेवाले प्रदर्शनों का भी संघ द्वारा दमन किया गया।

इसी बीच 1818 के रेगुलेशन-3 को वर्ष 1907 में लागू किया गया। सरकार को मानो 'ब्रह्मास्त्र' मिल गया। देखते-ही-देखते देश भर के अनेक प्रमुख क्रांतिकारी नेताओं को बंदी बनाकर बिना मुकदमा चलाए जेल में डाल दिया गया। इनमें अजीत सिंह भी सम्मिलित थे। वे लाला लाजपतराय के साथ बर्मा की मांडले जेल में बंद थे।

## 'नाम करेगा रोशन'

अजीत सिंह के बाद आंदोलन की कमान किशनसिंह और स्वर्ण सिंह ने सँभाल ली। वे सभाओं को संबोधित करते हुए देशभक्ति एवं जोश से परिपूर्ण भाषण देने लगे। उन्होंने सरकार की कानूनी कार्रवाई और नीतियों से संबंधित अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाए, जिनका उत्तर देना सरकार के लिए गले की फाँस बन गया। अजीत सिंह को बंदी बनाकर सरकार पंजाब-आंदोलन की समाप्ति की बात सोच रही थी; परंतु किशनसिंह और स्वर्ण सिंह ने इस विषय पर उन्हें पुनः सोचने पर विवश कर दिया। अंततः दोनों भाइयों को भी बंदी बना लिया गया। जेल में उन्हें एक ही कोठरी में रखा गया था।

जिन दिनों उन्हें बंदी बनाया गया उन दिनों विद्यावती गर्भवती थीं। जेल

की दिनचर्या में थोड़ी सी फुरसत मिलते ही दोनों भाई अकसर आनेवाले बच्चे के बारे में बातें किया करते थे। इसी तरह एक दिन स्वर्ण सिंह ने बड़े भाई किशनसिंह को छेड़ते हुए कहा, ''भाई साहब, आपके विचार में मेरा भतीजा होगा या भतीजी?''

''स्वर्णा, मुझे तुम्हारी भाभी जैसी एक प्यारी-सी और गुणी बेटी चाहिए। एक ऐसी बेटी, जो हमारे घर के साथ-साथ पराए घर को भी खुशियों से भर दे; जिसकी परवरिश और कन्यादान कर मैं जीवन के सभी ऋणों से मुक्त हो जाऊँगा। लेकिन देश को ऐसे युवक की भी जरूरत है, जो समय आने पर अपना सिर कटवाने से भी पीछे न हटे; जिसके साहस, वीरता और निडरता से ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ जाए; जो लोगों में क्रांति की लौ जला सके। देश की जरूरत मेरी इच्छा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम्हारा भतीजा ही होगा। वह दुनिया भर में हमारा और हमारे कुल का नाम रोशन करेगा।''

□

अध्याय 2

# भागाँवाला भगत

27 सितंबर, 1907; दिन शनिवार; पंजाब के लायलपुर जिले का बंगा गाँव; प्रात: लगभग 9 बजे। बंद कमरे में दर्द से छटपटाती विद्यावती का क्रंदन गूँज रहा था। पास बैठी सास जयकौर माथे को सहलाते हुए उन्हें धीरज बँधा रही थीं। दाई तेजी से अपने काम में व्यस्त थी। कमरे के बाहर सरदार अर्जुन सिंह बड़ी बेचैनी से इधर-उधर टहलते हुए किसी शुभ समाचार की प्रतीक्षा कर रहे थे। बुदबुदाते होंठों से 'वाहेगुरु' का जाप करते हुए कभी-कभी वे बंद दरवाजे की ओर देख लेते।

तभी नवजात शिशु की किलकारियों से आँगन गूँज उठा। अर्जुन सिंह ने शांति की साँस ली और हाथ उठाकर वाहेगुरु का शुक्रिया अदा किया।

थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला और दाई ने खुशखबरी दी, ''बधाई हो, सरदार साहब! पोता हुआ है।''

सूर्य की तप्त किरणों से चेहरा जगमगा उठा; बूढ़ी हड्डियों में जैसे जवानी की लहर दौड़ गई। सरदार अर्जुनसिंह पुन: उस समय में लौट आए, जब उनके घर किशनसिंह का जन्म हुआ था। वे हँसते हुए दाई से बोले, ''यह मेरा पोता नहीं बल्कि मेरा पुनर्जन्म है। मुझे विश्वास है कि मेरा यह जीवन पूरी तरह से देशसेवा में समर्पित होगा।''

कुछ ही देर में बधाई देनेवालों से पूरा आँगन भर गया।

### नामकरण

कहते हैं कि किसी पुण्यात्मा के आगमन से अशुभता भी धीरे-धीरे क्षीण होकर शुभता में परिवर्तित होने लगती है। ऐसा ही सरदार अर्जुनसिंह के साथ भी हुआ। जिस समय नवजात शिशु के रुदन से उनका आँगन गूँज रहा था, उस समय

उनके पुत्र देशभक्ति का जज्बा लिये कठोर कारावास की सजा भोग रहे थे। किशनसिंह, अजीतसिंह, स्वर्णसिंह– तीनों भाई शिव के त्रिशूल की भाँति ब्रिटिश सरकार पर निरंतर आघात कर रहे थे। वे सरकार की आँखों की किरकिरी बन चुके थे। इसलिए उनसे छुटकारा पाने के लिए बिना मुकदमा चलाए ही उन्हें कारावास में डाल दिया था। यद्यपि वकील सरकार के विरुद्ध उनके पक्ष को अदालत में रख चुके थे, तथापि जेल से रिहा होना असंभव प्रतीत हो रहा था।

ऐसे में शिशु का आगमन परिवार के लिए शुभ सिद्ध हुआ। वकीलों की मेहनत रंग लाई; सरकार को झुकना पड़ा। शिशु–जन्म के तीसरे दिन ही किशनसिंह एवं स्वर्णसिंह जमानत पर छोड़ दिए गए। अभी उन्होंने घर में प्रवेश किया ही था कि पीछे–पीछे अजीतसिंह के रिहा होने का समाचार भी आ पहुँचा।

घर में उत्सव का वातावरण बन गया। शिशु अवश्य एक पुण्यात्मा थी, जिसने परिवार के सभी दु:खों को नष्ट कर उनमें खुशियों का संचार कर दिया था।

शिशु को गोद में उठाकर जयकौर भावावेग में बोलीं, ''मेरा पुत्तर कितना भागाँवाला है। इसके आते ही बिछड़ा हुआ परिवार फिर से मिल गया। मेरा मन कहता है कि पिछले जन्म में यह जरूर कोई बड़ा भगत रहा होगा। इस जन्म में यह हमारे कुल का उद्धार करने के लिए आया है।''

''ठीक है बेबे, आज से हम इसे 'भगत' ही कहेंगे। भागोंवाला भगत, भगत सिंह।'' किशनसिंह ने माँ के हृदय से निकले शब्दों पर अपने समर्थन की मुहर लगा दी।

इस प्रकार अनजाने ही शिशु का नामकरण हो गया। 'भगतसिंह'– एक ऐसा नाम, जो आनेवाले वर्षों में सदा–सदा के लिए अमिट हो जाने वाला था; इतिहास ने जिसे सुनहरे अक्षरों में सँजोना था; जिसे देशभक्ति और बलिदान का परिचायक बनना था।

## भारत माता सोसाइटी

जेल से छूटने के बाद किशनसिंह और अजीतसिंह पुन: क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न हो गए। कांग्रेस की नरम और तुष्टीकरण की नीतियों का उन्होंने सदा विरोध किया। उनका मानना था कि 'ढुल–मुल व्यवहार या नीतियों द्वारा अंग्रेजों को भारत से निकालना असंभव है कठोर कदम उठाकर ही उनसे निबटा जा सकता है।'

गरम दल के समर्थक होने के कारण क्रांतिकारियों के लिए उनके मन में विशेष सम्मान था। 'देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने का दृढ़ निश्चय'– यही उनका आदर्श था। गरम दल द्वारा आयोजित किसी भी सभा में सम्मिलित होना उनके लिए गौरव की बात थी। अवसर मिलने पर वे उनकी यथासंभव सहायता करने से भी पीछे नहीं हटते थे।

वर्ष 1908 में एक आम सभा में सरकार और उसकी अनीतियों का विरोध करने के कारण लोकमान्य तिलक को बंदी बना लिया गया। उन पर असामाजिक गतिविधियों में लिप्तता और लोगों को सरकार के विरुद्ध भड़काने का आरोप लगाया गया। तिलक को बंदी बनाकर सरकार ने क्रांतिकारियों को भड़काने का कार्य कर दिया था। अब वे खुलकर उसके विरुद्ध खड़े हो गए। उनका नेतृत्व करते हुए किशनसिंह ने 'भारत माता सोसाइटी' की स्थापना की। इसके अंतर्गत 'पेशवा' नामक पत्र का प्रकाशन किया गया, जिसमें सरकार का जोरदार शब्दों में विरोध किया जाता था। इस कार्य में स्वर्णसिंह भी भाई की सहायता कर रहे थे। दिन-प्रतिदिन इसके पाठकों की संख्या बढ़ती जा रही थी। कुछ ही दिनों में अनेक लोग 'भारत माता सोसाइटी' से जुड़ गए।

तिलक की गिरफ्तारी ने अजीतसिंह को भी विचलित कर दिया था। वे सूफी अंबा प्रसाद के साथ मिलकर लोगों में आजादी का मंत्र फूँकने लगे। उन्होंने देश भर के दूरस्थ स्थानों का भ्रमण कर क्रांतिकारी साहित्य का प्रचार किया, विचारोत्तेजक भाषण दिए, जन-जन को आजादी की लड़ाई से जुड़ने के लिए प्रेरित किया।

## अजीतसिंह का पलायन

एक ओर किशनसिंह एवं स्वर्णसिंह भारत माता सोसाइटी द्वारा लोगों को जाग्रत् कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर अजीतसिंह उन्हें एकजुट करने के अभियान के अग्रदूत थे। तीनों सिंहों की दहाड़ से लोगों के सोए हुए मन-मस्तिष्क में क्रांति की ज्वाला धधकने लगी, रग-रग में देशभक्ति का संचार होने लगा। स्थिति बिगड़ती देख ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ गई। उन्होंने अजीतसिंह को पकड़ने की मुहिम तेज कर दी।

चूँकि किशनसिंह को पहले ही इसकी भनक लग चुकी थी, अत: उन्होंने अजीतसिंह के साथ गुप्त भेंट की और उन्हें समझाया, ''अजीत, अंग्रेज सैनिक भूखे भेड़ियों की तरह तुम्हें जगह-जगह ढूँढ़ रहे हैं। वे कभी भी यहाँ तक पहुँच सकते हैं। मुझे डर है कि कहीं इस बार सरकार तुम्हारे विरुद्ध कोई कठोर कदम

न उठा ले। उचित यही है कि तुम कुछ दिनों के लिए देश से बाहर चले जाओ।''

''आप यह क्या कह रहे हैं? यह देश नहीं, मेरा परिवार है; ये लोग मेरे सगे-संबंधी हैं। इन्हें संकट में छोड़कर मैं कैसे जा सकता हूँ? इन्हें मेरी जरूरत है और मैं अपने प्राण देकर भी इनके लिए लड़ूँगा। मुझे सीने पर गोली खाना स्वीकार है, लेकिन मुँह छिपाकर भाग जाना मरने से भी अधिक पीड़ादायक है। मैं देश की सेवा करते हुए यहीं प्राण त्यागना पसंद करूँगा।'' अजीतसिंह ने प्रत्युत्तर दिया।

''अजीत, मैं तुम्हें देश-सेवा से मुँह मोड़ने के लिए नहीं कह रहा। मैं जानता हूँ कि पीठ दिखाना हमारे कुल की परंपरा नहीं है। इतिहास गवाह है कि समय आने पर हमारे पूर्वजों ने पीठ दिखाने की बजाय अपने शीश कटवाना अधिक उपयुक्त समझा। देश के लिए अपने परिवार का बलिदान कर देना मुगलकाल से हमारा धर्म रहा है। लेकिन देश को इस समय तुम्हारे बलिदान की नहीं, बल्कि तुम्हारी आवश्यकता है। देश के अंदर अंग्रेजों से लड़नेवाले बहुत से क्रांतिकारी हैं, परंतु देश से बाहर भारतीयों की आवाज बुलंद करनेवाले कुछ ही लोग हैं। मैं चाहता हूँ कि यह कार्य तुम करो, जिससे दूसरे देशों के नागरिक हमारी लड़ाई में मानसिक रूप से जुड़ सकें।'' किशनसिंह ने पुनः समझाया।

इस बार अजीतसिंह सोचने के लिए विवश हो गए। जोश में होश होकर प्राण त्यागने की अपेक्षा शांति रखकर देश के लिए कार्य करते रहना अधिक उचित था।

अंततः कुछ दिन बाद ही गुपचुप तरीके से वे विदेश चले गए। बाद में उन्होंने यूरोप की यात्रा की और भारतीयों के स्वतंत्रता-संघर्ष और मनोदशा से दुनिया भर को अवगत करवाया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने रोम रेडियो से एक मर्मस्पर्शी और ओजस्वी भाषण दिया, जिसे विभिन्न देशों द्वारा सराहा गया।

अजीतसिंह ने कुछ महीनों बाद भारत लौट आने की बात सोचकर वर्ष 1909 में देश से पलायन किया था। परंतु उनका यह वनवास तब समाप्त हुआ, जब वर्ष 1946 में मध्यावधि सरकार बनने पर पं. जवाहरलाल नेहरू के प्रयासों द्वारा वे पुनः भारत आए। इस दौरान देश एवं परिवार से बिछड़े हुए उन्हें लगभग 37 वर्ष बीत चुके थे।

अजीतसिंह के बारे में एक बात विशेष उल्लेखनीय है। उन्हें पढ़ने-लिखने

का बहुत शौक था। बर्मा में जेल-प्रवास के दौरान उनका अधिकतर समय पढ़ने-लिखने में ही व्यतीत होता था। उन्होंने न केवल विभिन्न पुस्तकों का गहन अध्ययन किया, बल्कि अनेक लेख भी लिखे। जेल से छूटने के बाद वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत करते उनके वे ज्वलंत लेख पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। 'मुहिब्बाने-वतन' नामक इस पुस्तक को सरकार ने जब्त कर लिया गया। बाद में सूफी अंबा प्रसाद ने ईरानी भाषा में इसका अनुवाद भी किया।

## स्वर्णसिंह की मृत्यु

अजीतसिंह को पकड़ने के लिए ब्रिटिश सरकार ने जाल बिछाया था। इस बार उन्होंने कानून की आड़ में अपने इस शत्रु को समाप्त करने की पूरी योजना बना ली थी। परंतु पंछी उड़ गया और वे हाथ मलते रह गए। इस असफलता ने उन्हें क्रोधित कर दिया। उनका क्रोध किशनसिंह पर टूट पड़ा। आनन-फानन में कार्रवाई की गई। असामाजिक एवं विद्रोही गतिविधियों का गढ़ बताकर भारत माता सोसाइटी को प्रतिबंधित कर दिया गया; उसके अनेक कार्यकर्ताओं को जेलों में ठूँस दिया गया। किशनसिंह और स्वर्णसिंह को बंदी बनाकर उन पर मुकदमा चलाया गया।

भारत माता सोसाइटी से सरकार कितनी भयभीत थी, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उस पर लगभग 22 मुकदमे दायर किए गए। चूँकि अदालत ब्रिटिश जजों एवं वकीलों द्वारा संचालित थी, इसलिए मुकदमों में सरकार की जीत सुनिश्चित थी। अदालती निर्णय के अंतर्गत किशनसिंह को एक साल और पाँच महीने की सजा दी गई, जबकि स्वर्णसिंह को भी कठोर कारावास की सजा मिली। दोनों भाइयों को लाहौर की सेंट्रल जेल में रखा गया। वहाँ उनसे अत्यधिक काम लिया गया। बदले में दो सूखी रोटी और थोड़ा सा पानी उन्हें भोजन में दिया जाता। किशनसिंह का शरीर इन आघातों को जैसे-तैसे सह गया, लेकिन स्वर्णसिंह के लिए ये आघात असहनीय थे। पोषण के अभाव और अत्यधिक परिश्रम के फलस्वरूप दिन-प्रतिदिन उनका शरीर दुर्बल होता गया। अंततः 23 वर्ष की अल्पायु में तपेदिक से पीड़ित होकर उनका देहावसान हो गया।

इस प्रकार समय के थपेड़ों ने पुनः परिवार पर वज्राघात किया।

□

अध्याय 3

# डी.ए.वी. में कायाकल्प

भगतसिंह के अतिरिक्त सरदार किशनसिंह की आठ संतानें और थीं। इनमें जगत सिंह, कुलवीर सिंह, कुलतार सिंह, राजेंद्र सिंह, रणवीर सिंह नामक पाँच पुत्र और बीबी अमर कौर, बीबी प्रकाश कौर (सुमित्रा) तथा बीबी शकुंतला नामक तीन पुत्रियाँ थीं। इनमें केवल जगत सिंह ही भगत सिंह से बड़े थे।

भगत सिंह का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ। माता-पिता के साथ-साथ दादा, दादी, चाचा एवं चाची का भी उनसे विशेष लगाव था। उनका तेजयुक्त चेहरा और गहरी आँखें किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती थीं। यही कारण था कि गाँव का हर बड़ा-बुजुर्ग, महिलाएँ, बच्चे-बालक भगत को गोद में उठाए घूमते रहते थे। उसकी अठखेलियाँ देखकर उनके होंठों पर मुसकान थिरक जाती और सहसा मुख से बोल निकलते, ''ईश्वर इस बच्चे पर अपना आशीर्वाद बनाए रखे। देश की सेवा करके एक दिन यह अपने कुल का नाम जरूर रोशन करेगा।''

## प्रारंभिक शिक्षा

सदियों से यह कहा जाता रहा है कि किसी बच्चे के लिए उसका घर ही उसका प्रथम विद्यालय और उसके माता-पिता प्रथम अध्यापक होते हैं। इसलिए जीवन की प्रारंभिक शिक्षा वह घर से ही प्राप्त करता है। शिष्टाचार, सत्यवादिता, ईमानदारी, नैतिकता, परोपकार, सहनशीलता, कर्मठता– आयु के आरंभिक दौर में इन संस्कारों का रोपण बच्चे में माता-पिता द्वारा ही किया जाता है। भगत सिंह के संबंध में यह कथन अक्षरश: सत्य सिद्ध होता है। जन्म के साथ ही उनकी प्रारंभिक शिक्षा आरंभ हो चुकी थी। उन्होंने एक ऐसे परिवार में आँखें खोली थीं, जिसका प्रत्येक सदस्य स्वयं में एक महान् व्यक्तित्व को समेटे हुए था, फिर चाहे वे सरदार अर्जुनसिंह हों अथवा किशनसिंह, अजीतसिंह हों या स्वर्णसिंह।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानकर मानवता के अनुरूप आचरण करने तथा कर्म को महत्त्व देने का गुण उन्हें दादा के सान्निध्य से प्राप्त हुआ। उनके व्यक्तित्व में इसका प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। उन्होंने कभी किसी धर्म विशेष को महत्त्व नहीं दिया। उनके लिए मानवता और देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करनेवाला ही सच्चा मनुष्य था। सदियों से चली आ रही निर्भयता, वीरता, देशभक्ति, बलिदान की भावना उन्हें पिता द्वारा प्राप्त हुई। आगे चलकर उन्होंने अपने कार्यों द्वारा इन गुणों को प्रकट किया।

यदि संक्षिप्त शब्दों में कहा जाए तो बचपन से ही भगतसिंह पर दादा के प्रगतिवादी तथा पिता एवं चाचाओं के क्रांतिकारी विचारों का गहरा असर पड़ा। घर का वातावरण उनके मानसिक और वैचारिक विकास के लिए सर्वथा उपयुक्त था।

## विद्यालय में प्रवेश

भगतसिंह कुछ बड़े हुए तो पिता किशनसिंह ने उनका दाखिला गाँव के एक प्राइमरी विद्यालय में करवा दिया। उनका पुत्र जगतसिंह भी इसी विद्यालय में शिक्षा ग्रहण कर रहा था। हाथ में तख्ती और किताबें लिये दोनों भाई स्कूल जाने लगे। शीघ्र ही कक्षा के सभी विद्यार्थी भगतसिंह के मित्र बन गए। उन्हें भगतसिंह के रूप में अपना मित्र, भाई, सहयोगी मिल गया था। वे अधिक-से-अधिक उनके निकट रहने की कोशिश करते थे।

यद्यपि जगतसिंह उनसे आयु में कुछ ही बड़े थे, लेकिन दोनों भाइयों के व्यवहार में बहुत अंतर था। जगतसिंह जहाँ एकाग्रचित्त होकर गहन अध्ययन की ओर ध्यान देते थे, वहीं भगतसिंह पढ़ाई-लिखाई और खेल-कूद से दूर अपने विचारों में ही डूबे रहते। कक्षा का बंधन, पढ़ाई का बोझ, खेल-कूद की मस्ती– उनके स्वतंत्र मन-मस्तिष्क को रास नहीं आते थे। ऐसा नहीं था कि वे पढ़ाई-लिखाई से जी चुराते थे, वरन् कक्षा में उनके समान लगन से पढ़नेवाला अन्य कोई छात्र नहीं था। उनकी तीव्र बुद्धि और शालीनता की अध्यापकगण भी प्रशंसा करते थे। लेकिन फिर भी उनका मन बिना किसी बंधन के हवाओं के समान बहना चाहता था। यही कारण था कि वे कक्षा समाप्त होते ही चाहरदीवारी लाँघकर दूर हरे-भरे मैदानों की ओर भाग जाते तथा स्वतंत्र उड़ते हुए पक्षियों को निहारते रहते। यदि यह कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा कि भगतसिंह की कल्पनाशीलता उनके व्यक्तित्व की तरह अधिक गहरी और सारगर्भित थी।

इधर कक्षा समाप्ति पर जब जगतसिंह को भगतसिंह की अनुपस्थिति का

पता चलता तो वे उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँच जाते और थोड़ा गुस्सा दिखाते हुए बोलते, ''भगत, तुम यहाँ अकेले क्या कर रहे हो? वहाँ सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

''मुझे इन खुले मैदानों में बैठना बहुत अच्छा लगता है। फिर मैं अकेला कहाँ हूँ? मेरे साथ उड़ते हुए पक्षी हैं, बहती हुई हवा है, खिले हुए फूल हैं, बहता हुआ पानी है।'' कल्पना में डूबे बालक भगतसिंह के मुख से दार्शनिक शब्द निकलते।

उनकी बातों को ठीक से न समझ पानेवाले जगतसिंह विस्मित होकर बोलते, ''भगत, तुम्हें यहाँ आकर मिलता क्या है? वहाँ दोस्तों के साथ खेला करो।''

भगतसिंह भाई की ओर देखकर शांत स्वर में कहते, ''यहाँ आकर मुझे असीमित शांति मिलती है, मेरी आत्मा की तड़प शांत होती है। ऐसा लगता है मानो मैं भी स्वतंत्र होकर खुले आकाश में उड़ रहा हूँ।''

''मुझे तो तुम्हारी कोई बात समझ में नहीं आती। तुम अपना ध्यान पढ़ाई में लगाया करो, अन्यथा गुरुजी से मार पड़ेगी।'' जगतसिंह झुँझलाकर कह उठते।

''आप चिंता मत कीजिए, मुझे गुरुजी कभी नहीं मारेंगे। मैं पहले ही सारा पाठ याद कर लूँगा।'' भगतसिंह हँसते हुए जवाब देते।

यद्यपि लोगों की दृष्टि में भाइयों के बीच का यह वार्त्तालाप अत्यंत साधारण हो सकता है, लेकिन इसके पीछे छिपे मर्म को समझा जाए तो यह पूर्णत: दार्शनिकता-युक्त है। इसके माध्यम से भगतसिंह ने कितने सहज ढंग से स्वतंत्रता का महत्त्व स्पष्ट किया है।

## जगतसिंह की मृत्यु

जगतसिंह और भगतसिंह में अगाध स्नेह था। आयु में बड़े होने के कारण जगतसिंह छोटे भाई का पूरा ध्यान रखते थे। वे जहाँ भी जाते, भगतसिंह उनके साथ होते। दोनों की जोड़ी देखकर लोग अकसर हँसते हुए कहते थे, ''किशनसिंह के दोनों लड़के साक्षात् राम-लक्ष्मण लगते हैं। इनके प्राण एक-दूसरे में बसते हैं। हमने कभी भी इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं देखा।''

लोगों की ये बातें सुनकर विद्यावती किसी आशंका से भयभीत हो जाती और उसी समय दोनों की नजर उतार देती। उसे ऐसा करते देख किशनसिंह मन-ही-मन मुसकराकर रह जाते।

लेकिन मनुष्य अनेक प्रयत्न कर ले, विधाता के लिखे को मिटाया नहीं जा सकता। नियति ने दोनों भाइयों को अलग करने का निर्णय कर लिया था।

एक दिन जगतसिंह स्कूल से लौटा तो उसे तेज बुखार था। शाम तक स्वास्थ्य इतना बिगड़ा कि उसने बिस्तर पकड़ लिया। शीघ्रता से वैद्य को बुलाकर इलाज शुरू हुआ। लेकिन दवा बिलकुल बेअसर रही। जैसे-जैसे दिन बीतते गए, रोग बढ़ता गया। अंततः ग्यारह वर्षीय जगतसिंह ने सदा के लिए आँखें बंद कर लीं।

किशोर पुत्र की मृत्यु परिवार के लिए वज्राघात के समान थी। लेकिन इसका सबसे गहरा प्रभाव नन्हे भगतसिंह पर पड़ा। वे जगतसिंह से बहुत प्रेम करते थे। वे भी भगतसिंह को भरपूर लाड़-प्यार देते थे। जिस भाई की उँगली पकड़कर भगतसिंह ने स्कूल जाना आरंभ किया था, वह बीच मार्ग में ही उँगली छुड़वाकर संसार से विदा हो गया। दोनों भाइयों की तुलना शरीर और छाया से की जाती थी। लेकिन विधाता के क्रूर प्रहार ने परछाईं को शरीर से सदा के लिए जुदा कर दिया।

यद्यपि समय के साथ-साथ परिवारजन के घाव भरते गए, किंतु भगतसिंह जीवन भर भाई की स्मृति को भुला नहीं पाए। उनके मन पर जगतसिंह की जो अमिट छाप पड़ी थी, वह उनकी मृत्यु तक ज्यों-की-त्यों बनी रही।

## नवाकोट में निवास

भाई की मृत्यु के बाद भगतसिंह अकेले पड़ गए और खोए-खोए से रहने लगे। न तो वे खाने में रुचि लेते थे और न ही उन्हें मित्रों के साथ कहीं आना-जाना पसंद था। उनका अधिकांश समय खेतों के बीच में स्थित एक विशाल वटवृक्ष के नीचे व्यतीत होता था। वहाँ वे घंटों बैठकर एकटक प्रकृति को निहारा करते थे।

एक नन्हे बालक की यह मनोदशा देखकर विद्यावती को चिंता होने लगी। इस विषय में उन्होंने पति किशनसिंह से बात की, ''भगत को न जाने क्या हो गया है। वह सबसे बहुत कटा-कटा रहने लगा है। अकेला बैठकर न जाने क्या सोचता रहता है? बार-बार बुलाने पर भी सबके साथ नहीं बैठता। मुझे तो बहुत चिंता हो रही है।''

''जगतसिंह के साथ उसका बहुत प्यार था। उसके बिछोह का सदमा ही उसे घेरे हुए है। तुम चिंता मत करो, मैं कोई उपाय अवश्य करता हूँ।''

किशनसिंह ने पत्नी को समझाते हुए कहा।

"जो करना है, जल्दी करना। मुझे डर है, कहीं हम अपने इस बेटे को भी न खो दें।" विद्यावती ने आँसू पोंछते हुए कहा।

किशनसिंह गहरी सोच में पड़ गए।

चूँकि घर के कोने-कोने में जगतसिंह की यादें बसी हुई थीं, जिनसे भगतसिंह को दूर करना आवश्यक था। बहुत सोच-विचार के बाद किशनसिंह ने निर्णय लिया कि वे गाँव छोड़कर परिवार सहित अन्यत्र चले जाएँगे। इस निर्णय से उन्होंने पिता को भी अवगत करवाया।

"तुमने जो सोचा है, अच्छा है। भगत को इस माहौल से दूर ले जाना जरूरी है और फिर, अब तुम्हें भी थोड़ा-बहुत अपने घर-परिवार पर ध्यान देना चाहिए।" सरदार अर्जुनसिंह ने उनके निर्णय पर सहमति की मुहर लगा दी।

अत: किशनसिंह परिवार सहित नवाकोट चले गए। वहाँ उनकी कुछ जमीन-जायदाद भी थी। इसलिए कुछ ही दिनों में वे वहाँ अच्छी तरह से रच-बस गए।

## हाई स्कूल में प्रवेश

भगतसिंह की प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही पूरी हुई। आगे की पढ़ाई के लिए किशनसिंह उन्हें हाई स्कूल में दाखिल करवाना चाहते थे। उन दिनों नवाकोट में सिखों के लिए खालसा स्कूल स्थापित था। वे अपने बच्चों को शिक्षा हेतु इसी स्कूल में दाखिल करवाते थे। यद्यपि उस स्कूल की प्रबंधन कमेटी भारतीयों द्वारा संचालित थी, तथापि चाटुकारिता के कारण वे ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू थे। विभिन्न समोराहों में स्कूल द्वारा अंग्रेज अधिकारियों का सम्मान इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था। इसके बदले में उन्हें सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी। अनेक मित्रों एवं संबंधियों ने किशनसिंह को परामर्श दिया कि वे भगतसिंह को इस स्कूल में भरती करवा दें।

लेकिन जो स्कूल नींव से शिखर तक अंग्रेजी रंग में डूबा हो, जिस पर अंग्रेजी हुकूमत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता हो, उसमें अपने पुत्र का दाखिला करवाना एक सच्चे देशभक्त के लिए अपमान की बात थी। भारत माता को गुलामी की बेड़ियों से आजाद करवाने के लिए किशनसिंह के पूर्वज और वे स्वयं ब्रिटिश सरकार का विरोध करते आए थे। ऐसे में खालसा स्कूल में भगतसिंह का दाखिला करवाकर वे अपने पूर्वजों के बलिदान को निरर्थक नहीं

बना सकते थे। अंततः उन्होंने लाहौर के दयानंद एंग्लो वैदिक (डी.ए.वी.) स्कूल में भगतसिंह को भरती करवा दिया। उनके इस कार्य से अनेक लोग विचलित हो उठे और उन्होंने किशनसिंह का पुरजोर विरोध किया। लेकिन वे अपने निर्णय पर अडिग रहे।

डी.ए.वी. स्कूल का राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत वातावरण भगतसिंह को बहुत रास आया। वहाँ उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू के साथ-साथ संस्कृत का भी गहन अध्ययन किया। देशभक्ति, सत्यवादिता, निर्भयता आदि गुण भगतसिंह में पहले से ही विद्यमान थे। परंतु उस वातावरण में उन गुणों को पूरी तरह से पनपने का अवसर मिला। यदि संक्षिप्त शब्दों में कहा जाए तो यह वही स्थान था जहाँ 'शहीदे-आजम भगतसिंह' का वास्तविक जन्म हुआ।

□

अध्याय 4

# गोली खाएँगे नहीं, मारेंगे

प्रथम विश्वयुद्ध अपने चरम पर था। दुनिया भर के देश दो गुटों में बँटकर अस्त्र ताने हुए एक-दूसरे को नष्ट करने को उद्यत थे। इंग्लैंड भी इस युद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। लेकिन इससे समस्याएँ बढ़ गईं। युद्ध में इंग्लैंड को उलझा देखकर भारत में स्वतंत्रता सेनानियों एवं क्रांतिकारियों ने उनका विरोध तीव्र कर दिया था। एक ओर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शत्रु देशों से युद्ध और दूसरी ओर भारत पर नियंत्रण रखना— ब्रिटिश सरकार को दो मोरचों पर एक साथ लड़ना पड़ रहा था। स्थिति निरंतर बिगड़ती जा रही थी, उनका विरोध जोर पकड़ता जा रहा था।

भारत न केवल इंग्लैंड में स्थापित उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खपत तथा धन उगाहने का एक प्रमुख स्रोत था, बल्कि एशिया महाद्वीप में स्थापित उनकी शक्ति का केंद्र-बिंदु था। सरकार किसी भी स्थिति में इस उपयोगी उपनिवेश को हाथ नहीं जाने देना चाहती थी। अंतत: ब्रिटिश संसद् में एक अधिनियम पारित किया गया। चूँकि इस एक्ट पर तत्कालीन ब्रिटिश न्यायाधीश सिडनी रोलेट ने हस्ताक्षर किए थे, इसलिए इसे 'रोलेट एक्ट' कहा गया।

इस अधिनियम का कार्य किसी भी तरह की क्रांतिकारी गतिविधियों एवं आंदोलनों को रोकना था। इसके अंतर्गत भारत में नियुक्त ब्रिटिश अधिकारियों को बिना जाँच के किसी भी व्यक्ति को जेल में डालने तथा दमनकारी हथकंडों को अपनाने का अधिकार दिया गया था।

मार्च 1919 में रोलेट एक्ट को भारत में प्रभावी कर दिया गया।

एक्ट के लागू होते ही मानो अंग्रेज अधिकारियों को 'ब्रह्मास्त्र' मिल गया। उन्होंने अकारण ही कई राजनेताओं को जेलों में ठूँस दिया; शांतिपूर्वक एवं

अहिंसात्मक प्रदर्शनों को भी प्रतिबंधित कर दिया गया। इससे भारतीय नेताओं एवं जनता में रोष बढ़ गया। गांधीजी ने सरकार से राजनीतिक बंदियों को इस एक्ट से मुक्त रखने की अपील की। उनका कथन था कि ''सामाजिक अपराधों एवं राजनीतिक अपराधों को अलग-अलग श्रेणी में रखना चाहिए और उनके लिए अलग-अलग कानूनी प्रावधान होने चाहिए।''

लेकिन सरकार ने उनकी बात अनसुनी कर दी।

गांधीजी ने मद्रास (चेन्नई) जाकर कस्तूरीरंगन और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी से भेंट की। वहीं उन्हें रोलेट एक्ट के विरुद्ध हड़ताल करने का विचार आया। सबको यह विचार उचित लगा। अंततः गांधीजी ने 30 मार्च, 1919 को देशव्यापी 'अहिंसात्मक हड़ताल' का आह्वान किया। बाद में किसी कारणवश यह तिथि आगे बढ़ा दी गई और हड़ताल के लिए 6 अप्रैल का दिन निश्चित हुआ। सभी जगह सूचना प्रेषित कर दी गई।

लेकिन दिल्ली में तिथि-परिवर्तन की सूचना विलंब से पहुँची, जिसके फलस्वरूप स्वामी श्रद्धानंद के नेतृत्व में वहाँ 30 मार्च को ही हड़ताल हो गई। इस अवसर पर हिंदू-मुसलिम एकता का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लोगों ने विशाल जुलूस निकाला। लेकिन सरकार को यह बरदाश्त नहीं हुआ। भीड़ को तितर-बितर करने के लिए सैनिकों को निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चलाने के आदेश दे दिए गए। इस नरसंहार में अनेक लोग शहीद हो गए, जबकि अनेक बुरी तरह से घायल हुए। लाहौर, अंबाला, अमृतसर, जालंधर सहित समस्त उत्तर भारत में इसी दिन हड़ताल हुई और पुलिस ने वहाँ भी दिल्ली जैसी दमनकारी नीतियों का भरपूर उपयोग किया।

इसी बीच गांधीजी की घोषणा के अनुसार शेष भारत में 6 अप्रैल को हड़ताल हुई। देखते-ही-देखते देश भर के सभी सरकारी एवं गैर-सरकारी कामकाज ठप कर दिए गए। विद्यार्थी भी स्कूल-कॉलेज छोड़कर हड़ताल में सम्मिलित हो गए। इसे 'रोलेट सत्याग्रह' के नाम से जाना जाता है। देश के विभिन्न स्थानों में शांतिपूर्वक प्रदर्शन किए गए तथा गिरफ्तारियाँ दी गईं। गांधीजी को भी बंदी बना लिया गया। इससे कुछ स्थानों पर तनाव उत्पन्न हो गया और आंदोलनकारियों द्वारा हिंसा करने के समाचार आने लगे। बाद में गांधीजी ने स्वयं को जिम्मेदार ठहराते हुए रोलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह को स्थगित कर दिया।

पंजाब में डॉ. सत्यपाल और डॉ. सैफुद्‌दीन किचलू के नेतृत्व में रोलेट एक्ट का विरोध बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा था। परिणामस्वरूप 10 अप्रैल को

दोनों नेता बंदी बना लिये गए। सरकार के इस कृत्य से लोगों में रोष की लहर दौड़ गई। इसका जवाब माँगने के लिए जुलूस के रूप में वे कमिश्नर के बँगले की ओर चल दिए। लेकिन अधिकारियों के आदेश पर सैनिकों ने निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चला दीं। कुछ ही देर में सड़क लाशों से पट गई।

इस भीषण नरसंहार ने लोगों को विचलित कर दिया और उन्होंने 13 अप्रैल को एक सभा के आयोजन का निश्चय किया।

## जलियाँवाला हत्याकांड

पंजाबी संस्कृति में 13 अप्रैल का दिन अत्यंत गौरवशाली और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह वह दिन है, जिसे न केवल पंजाब बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष तथा विदेश में रहनेवाले भारतीय भी 'बैसाखी' के रूप में मनाते हैं। यह दिन त्याग, बलिदान, शौर्य, निडरता और साहस का प्रतीक है।

कहते हैं कि एक बार गुरु गोविंद सिंह ने एक सभा आयोजित की। इसके पीछे उनका उद्देश्य अपने अनुयायियों की परीक्षा लेना और बलिदानी वीरों की खोज करना था। सभा के दौरान उन्होंने चमकती हुई दुधारी तलवार हाथ में ली और गरजते हुए बोले, ''मुझे एक महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए पाँच सिर-कमलों की आवश्यकता है। अत: हे भाग्यशाली पुरुषो! उठो और मातृभूमि के लिए अपने सिर-कमल अर्पित कर दो।''

उद्घोषणा सुनकर उपस्थित लोग अचंभित रह गए। उन्होंने सोचा था कि यह एक साधारण सभा होगी, परंतु यहाँ उनके मस्तक माँगे जा रहे थे। मन में हलचल होने लगी; मृत्यु के भय से पसीने छूटने लगे।

गुरु गोविंद सिंह पुन: गरजे, ''क्या कोई ऐसा वीर नहीं है, जो मातृभूमि के लिए अपना मस्तक अर्पित कर सके? मुझे पाँच सिर-कमलों की आवश्यकता है। लेकिन यहाँ तो एक सिर मिलना भी असंभव हो गया है।''

सहसा एक-एक कर पाँच साहसी युवक उठे और स्वयं को मातृभूमि के लिए समर्पित कर दिया। गुरु गोविंद सिंह के लिए कौन प्राण दे सकता है, इस परीक्षा में वे युवक खरे उतरे और 'पाँच प्यारे' बन गए।

आज फिर 13 अप्रैल का दिन था; चारों ओर बैसाखी का रंग खिला हुआ था। सूर्य की किरणें अमृतसर को अपने प्रकाश से चमका रही थीं। मिठाई, नए कपड़ों और खिलौनों के बारे में सोचते हुए बच्चे इधर-उधर दौड़ रहे थे। लेकिन इनसे दूर अमृतसर के पवित्र स्वर्ण मंदिर के पास स्थित जलियाँवाला बाग में

आज विशेष हलचल थी। अमृतसर के हर स्वतंत्रता-प्रेमी के कदम उस ओर बढ़ रहे थे। धीरे-धीरे पूरा बाग खचाखच भर गया। एक अनुमान के अनुसार उस दिन लगभग 6 हजार पुरुष, महिलाएँ और बच्चे जलियाँवाला बाग में उपस्थित थे।

निर्धारित समय पर सभा आरंभ हुई। सर्वप्रथम रोलेट एक्ट के विरोध में भाषण दिए गए, फिर तीन दिन पहले हुए नरसंहार पर सरकार की दमनकारी नीतियों की आलोचना की गई। सभा पूरे उफान पर थी; बीच-बीच में 'वंदे मातरम्' के उद्‌घोष से पूरा बाग गुँजायमान हो उठता।

आंदोलनकारी जलियाँवाला बाग में सभा कर रहे हैं– पंजाब के तत्कालीन गवर्नर माइकल ओ' डायर को इसकी सूचना मिल गई थी। उसने अपने उपनाम वाले जनरल रेजिनोल्ड डायर को सभा रोकने का आदेश दिया। जनरल डायर ने अस्त्र-शस्त्रों से युक्त 90 सैनिकों को साथ लेकर सभास्थल की ओर कूच किया।

जलियाँवाला बाग चारों ओर से बड़ी-बड़ी दीवारों से घिरा हुआ था। उसमें प्रवेश करने का एक ही मार्ग था। लेकिन वह मुख्य प्रवेश-द्वार भी इतना सँकरा था कि सिर्फ एक-एक करके ही अंदर या बाहर आया जा सकता था। डायर के आदेश पर सैनिक बाग में घुसकर मुख्य द्वार पर खड़े हो गए। उन्होंने अपनी-अपनी बंदूकें लोगों की ओर तान दीं। इस कार्रवाई से बेखबर लोग शांतिपूर्वक बैठे हुए भाषण सुनने में मगन थे।

सहसा जनरल डायर का स्वर गूँजा, ''फायर! शूट द ब्लडी डॉग्स!''

आदेश मिलते ही सैनिकों ने बंदूकों के मुँह खोल दिए और गोलियों की पहली बौछार ने ही अनेक लोगों को खून से नहला दिया।

इस अप्रत्याशित हमले की किसी ने कल्पना तक नहीं की थी और न ही जनरल डायर ने सभा समाप्त करने के लिए कोई पूर्व चेतावनी दी थी। चारों ओर भगदड़ मच गई। कुछ देर पहले तक जो स्थान देशभक्ति के नारों से गूँज रहा था, वहाँ अब चीख-पुकार मच गई थी। लोग जान बचाकर प्रवेश-द्वार की ओर भागे। लेकिन जिन्होंने उस ओर मुँह किया, वहाँ तैनात सैनिकों ने उन्हें छलनी कर दिया। कोई चारा न देखकर लोग बाग की ऊँची-ऊँची चाहरदीवारी लाँघने की कोशिश करने लगे। लेकिन उसमें भी असफलता हाथ लगी। बाग में एक कुआँ था। जान बचाने के लिए औरतों ने बच्चों सहित उसमें छलाँग लगा दी। परंतु वह कुआँ भी काल का मुख सिद्ध हुआ।

कुछ देर बाद जनरल डायर सैनिकों सहित लौट गया और पीछे छोड़ गया इतिहास के सबसे काले एवं घिनौने कृत्य के निशान।

जलियाँवाला बाग– लाशों से पटा हुआ, रक्त से सनी मिट्टीवाला, जिंदगी के लिए तड़पते लोगों की कराहों से बिलखता। अंग्रेज सैनिकों की गोलियों ने न तो औरतों को छोड़ा था और न ही बच्चों को। खून से भीगी हुई लाशें, मांस के लोथड़े की तरह बिखरे हुए बच्चे– उस बीभत्स दृश्य को देखकर कठोर हृदयवाले भी द्रवित हो गए।

इस नृशंस संहार में अनगिनत लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। यद्यपि आधिकारिक तौर पर मरनेवालों की संख्या 379 बताई गई, लेकिन पं. मदनमोहन मालवीय के अनुसार यह संख्या 1,400 से भी अधिक थी। इसके विपरीत, अमृतसर के तत्कालीन सिविल सर्जन डॉ. स्मिथ के अनुसार मरनेवालों की संख्या 1,800 से अधिक थी।

जनरल डायर के इस कलंकित करनेवाले कृत्य की विश्व भर में निंदा की गई। महान् कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने इस हत्याकांड के विरोध-स्वरूप 'सर' की उपाधि लौटा दी। बाद में वीर क्रांतिकारी ऊधमसिंह ने लंदन में जनरल डायर को गोलियों से भूनकर जलियाँवाला बाग में मरनेवालों के खून का बदला लिया था।

## खून की कसम

तेज-तेज कदमों से चलनेवाला भगतसिंह आज इतना धीमा चल रहा था, मानो उसके पैरों के साथ किसी ने पत्थर बाँध दिए हों। उसका चेहरा उदासी में डूबा हुआ था। गहरी साँस छोड़ते हुए वह घर में घुसा। घर में चारों ओर शांति व्याप्त थी; उसकी जान-में-जान आई। तभी उसे छोटी बहन अमरकौर दिखाई दी; परंतु वह बात करने की स्थिति में नहीं था। इसलिए चुपचाप अपने कमरे की ओर जाने लगा।

अमरकौर ने उसे टोका, ''वीरजी, आज आने में बहुत देर कर दी? कहाँ थे आप? मैं कब से आपका इंतजार कर रही थी।''

भगतसिंह ने कुछ नहीं कहा। उसका यह व्यवहार अमरकौर के लिए अप्रत्याशित था। वह हड़बड़ा गई; फिर संयत होकर बोली, ''वीरजी, भंडारघर में रखे हुए आम पक गए हैं। हमने साथ-साथ खाने की बात की थी न, इसलिए मैं आपका इंतजार कर रही थी। चलो न अब जल्दी, मेरे मुँह में पानी आ रहा है।''

''तुमको खाना है तो जाकर खा लो। अभी मेरा मन नहीं है।'' भगतसिंह ने थोड़ा चिढ़कर जवाब दिया।

अमरकौर बड़ी देर से भाई के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। भगतसिंह को आम बहुत पसंद थे, इसलिए उसे विश्वास था कि घर आते ही वह सबसे पहले भंडार में रखे आम ही खाएगा। लेकिन आज वह हो गया, जो उसने कभी सोचा भी नहीं था। आम खाने की बजाय भगतसिंह अपने कमरे में चला गया था। उसने दरवाजे पर खड़े होकर कमरे में झाँका। भगतसिंह आँखें बंद कर कुरसी पर बैठा था। दु:ख की रेखाएँ उसके चेहरे पर साफ अंकित थीं।

आगे बढ़कर अमरकौर ने स्नेहवश उसके मस्तक पर हाथ रखा और धीरे से बोली, ''क्या बात है वीरजी? किसी ने डाँटा है क्या?''

कोमल स्पर्श पाते ही भगतसिंह ने आँखें खोलीं और शांत स्वर में बोला, ''नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।''

''तो फिर आप इतने दु:खी क्यों हो? सच-सच बताओ, बात क्या है?''

''मैं तुम्हें कुछ नहीं बता सकता। ये सब बातें समझने के लिए अभी तुम बहुत छोटी हो।''

''वीरजी, आज तक हम आपस में सारी बातें बताते रहे हैं। फिर यह कौन सी बात है जो मैं नहीं समझूँगी? बताओ न, आप इतने दु:खी क्यों हैं?'' अमरकौर ने लाड़ जताते हुए कहा।

भगतसिंह पिघल गया, ''ठीक है, बताता हूँ। लेकिन याद रखना, यह बात किसी को पता न चले। बेबेजी को इस बारे में कुछ मत बताना।''

''मुझपर विश्वास रखो, मैं किसी को कुछ नहीं बताऊँगी।'' अमरकौर ने बात दोहराई।

''जानती हो, आज मैं स्कूल नहीं गया था।'' भगतसिंह ने रहस्यमयी अंदाज में कहा।

अमरकौर ने विस्मित होकर पूछा, ''तो फिर तुम दिन भर कहाँ थे? इतनी देर से क्यों आए?''

''मैं अपने एक दोस्त के साथ अमृतसर गया था।'' भगतसिंह ने रहस्य के ऊपर से परदा उठाया।

''अमृतसर! वहाँ दरबार साहब के दर्शन करने गए थे?''

''नहीं, मैं वहाँ मौत का डरावना रूप देखने गया था।''

इतनी बड़ी बात छोटी अमरकौर की समझ से बाहर थी।

लेकिन भगतसिंह अपनी धुन में बोले जा रहा था, ''चारों ओर मौत नाच रही थी। कोई घर ऐसा नहीं था जिस पर काल की परछाईं न पड़ी हो।''

तदनंतर उसने अपनी जेब से एक शीशी निकाली और उसे अमरकौर को दिखाते हुए बोला, ''जानती हो, यह क्या है?''

''यह स्याही की दवात है।'' अमरकौर ने मासूमियत से जवाब दिया।

''अमरो, इसमें स्याही नहीं है। इसे खोलकर देखो।''

अमरकौर ने दवात ली और उसे खोलकर देखा। फिर चौंकते हुए बोली, ''अरे, इसमें स्याही की जगह क्या भरा हुआ है? यह क्या है?''

''यह मिट्टी है, खून से लाल हुई मिट्टी।''

''किसके खून से यह मिट्टी लाल हुई है? कहाँ से लाए हो इसे?'' अमरकौर ने काँपती आवाज में पूछा।

भगतसिंह ने उसे थपथपाते हुए कहा, ''अमृतसर के जलियाँवाला बाग में अंग्रेजों ने गोलियाँ चलाकर अनेक निहत्थे लोगों को मार डाला। उन शहीदों के खून से पूरी धरती लाल हो गई। यह वहीं की मिट्टी है।''

''तुमने यह सब देखा है?'' भयभीत स्वर में अमरकौर ने पूछा।

''नहीं, लेकिन बाद में इस नरसंहार की भीषण यातनाओं को अपनी आँखों से देखा है।'' भगतसिंह ने अपनी छोटी सी मुट्ठियाँ भींचते हुए कहा। गुस्से से उसके होंठ काँप रहे थे।

अमरकौर ने उसके कंधे पर हाथ रखा और उसे संयत करते हुए बोली, ''आज हमारे चाचा अजीतसिंह जी होते तो अंग्रेजों को मार-मारकर भगा देते।''

''तुम ठीक कहती हो, अमरो। मेरा भी मन बार-बार उनसे मिलने को करता है। अमरो! देख लेना, मैं चाचाजी जैसा ही बनूँगा और अंग्रेजों की नींद उड़ा दूँगा।'' नन्हे भगतसिंह ने जोश में भरकर कहा।

इसके बाद दोनों भाई-बहन में परस्पर बातचीत होती रही। भगतसिंह अपने हृदय में उठनेवाली भावनाओं को शब्दों के रूप में प्रकट करता रहा और अमरकौर एक मगन श्रोता की तरह उसके गूँजते शब्दों को सुनती रही।

तभी भगतसिंह की नजर दवात पर पड़ी और उसने मिट्टी से भरी वह

दवात उठाकर सामने आले में रखकर कहा, ''अमरो, कुछ फूल ले आओ।''

''अभी लाई, वीरजी।'' यह कहकर अमरकौर तेजी से बाहर चली गई।

खिड़की के सींखचों पर फैली बेला की लता में कलियाँ खिल रही थीं। अमरकौर जल्दी से उन्हें तोड़कर ले आई।

भगतसिंह ने एक सफेद रूमाल के ऊपर दवात की मिट्टी रखी और अमरकौर से कुछ अधखिली कलियाँ लेकर मिट्टी पर चढ़ा दीं। भाई की देखा-देखी अमरकौर ने भी हाथ में बची शेष सारी कलियाँ मिट्टी पर रख दीं। तदनंतर दोनों हाथ जोड़कर मन-ही-मन शहीदों की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की।

एकाएक भगतसिंह बोल उठा, ''नहीं-नहीं, अब हम गोली नहीं खाएँगे, बल्कि गोली मारेंगे! गोली मारेंगे उन अंग्रेजों को, जो हमारे निर्दोष लोगों का खून बहाते हैं। हमारे देश को गुलाम बनानेवालों का अस्तित्व समाप्त कर देंगे। मुझे इस मिट्टी की कसम! शहीदों के खून की कसम! मैं उनकी मृत्यु का प्रतिशोध अवश्य लूँगा!''

शपथ लेते समय बारह वर्षीय नन्हे भगतसिंह की आँखों से अंगारे निकल रहे थे। जलियाँवाला बाग में देखा गया एक-एक दृश्य उसके सामने घूम रहा था। उसकी रगों में बहनेवाला देशभक्तों का खून उबलने लगा था।

□

अध्याय 5

# गरम दल की ओर

वर्ष 1920 में महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन का आह्वान किया। आंदोलन के अंतर्गत निम्नलिखित क्रियाकलाप निर्धारित किए गए थे–

- ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई उपाधियाँ और सम्मान लौटाना।
- कौंसिल व चुनावों का बहिष्कार।
- सरकारी समारोहों का बहिष्कार।
- संघ में भरती होने से इनकार करना।
- अदालतों का बहिष्कार।
- शिक्षा संस्थानों का बहिष्कार।
- विदेशी कपड़ों का बहिष्कार।
- शराब की दुकानों पर धरना देना।

आंदोलन को देश के कोने-कोने तक पहुँचाने के लिए गांधीजी ने विभिन्न स्थानों की यात्राएँ कीं और आम सभाएँ आयोजित कर लोगों को जागरूक किया। इसी तरह की एक सभा लाहौर में भी आयोजित की गई। भगतसिंह भी जयदेव, झंडासिंह आदि मित्रों के साथ इस सभा में सम्मिलित हुए।

मंच पर बैठे गांधीजी आंदोलन के संदर्भ में व्याख्यान दे रहे थे– ''असहयोग आंदोलन अर्थात् हम सरकार के साथ किसी भी प्रकार के सहयोग से इनकार करते हैं। यह आंदोलन किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं है। इसमें संपूर्ण भारत और भारतवासियों का हित निहित है। इसकी पृष्ठभूमि पूर्णतः अहिंसात्मक है। हमें पूरी तरह से अहिंसा के प्रति निष्ठावान् रहते हुए निर्धारित कार्यों का अनुपालन करना है। मैं आह्वान करता हूँ कि आप लोग अदालतों, सरकारी दफ्तरों, स्कूल, कॉलेज आदि का बहिष्कार कर आंदोलन से जुड़ें।''

इन शब्दों का भगतसिंह पर गहरा असर हुआ। उस समय वे नौवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। लेकिन गांधीजी के आह्वान पर वे और उनके कुछ मित्र स्कूल छोड़कर आंदोलन से जुड़ गए। यद्यपि कुछ लोगों ने उन्हें मैट्रिक तक स्कूल न छोड़ने के लिए समझाया था, परंतु वे अपने निश्चय पर अडिग रहे। उनका कहना था कि ''यदि बहिष्कार स्वतंत्रता के मार्ग को प्रशस्त करता है तो उन्हें स्कूल छोड़ने में कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। शिक्षा पुनः प्राप्त की जा सकती है, लेकिन खोई हुई स्वतंत्रता पुनः प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। इसके लिए हरसंभव प्रयास करना उचित है।''

देखते-ही-देखते आंदोलन ने व्यापक रूप ले लिया। युवक स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार करने लगे। वकीलों ने कोर्ट-कचहरी में जाना छोड़ दिया। अन्य सरकारी कर्मचारी भी आंदोलन में कूद पड़े। जगह-जगह पर विदेशी कपड़ों और वस्तुओं की होली जलाई गई। शराब की दुकानें बंद करवाने के लिए महिलाएँ उनके आगे धरने देने लगीं। सफाई कर्मचारियों, धोबियों, नौकरों आदि ने अंग्रेजों के घरों में कार्य करने से इनकार कर दिया।

शीघ्र ही सरकारी तंत्र पर आंदोलन का प्रभाव पड़ने लगा; सरकारी कामकाज ठप पड़ गए। ऐसे में हाथ-पर-हाथ रखकर बैठना सरकार को मुसीबत में डाल सकता था। अतः पुनः दमनकारी नीतियों का सहारा लेते हुए अनेक प्रमुख नेताओं को जेल में डाल दिया गया। लेकिन इस बार उनकी यह नीति असफल हो गई। लोग सहर्ष जेल जाने लगे। स्थिति इतनी बदतर हो गई कि जेलों में बंदियों को रखने का स्थान कम पड़ने लगा। एक अनुमान के अनुसार, आंदोलन के दौरान लगभग 20 हजार से अधिक लोग जेल गए थे।

## आंदोलन पर पूर्ण विराम

असहयोग आंदोलन ने सरकार की नींद उड़ा दी। हिंदू-मुसलिम सहित सभी धर्मों के लोग इससे जुड़े हुए थे। उनकी एकजुटता देखकर सरकार का हौसला पस्त हुआ जा रहा था। लेकिन ऐसे में घटित एक घटना ने आंदोलन को पूरी तरह से असफल कर दिया।

4 जनवरी, 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के चौरीचौरा नामक एक छोटे से गाँव में असहयोग आंदोलनकारियों का जुलूस निकल रहा था। यह जुलूस पूरी तरह से अहिंसक और शांतिमय था। लेकिन जैसे ही वह स्थानीय चौकी के पास से निकला, वहाँ नियुक्त कुछ अंग्रेज सिपाही आंदोलनकारियों पर छींटाकशी करने लगे। प्रारंभ में आंदोलनकारी उनकी बातों की अनदेखी करते

रहे। परंतु बार-बार अपमानजनक शब्दों को सुनकर अंततः कुछ युवा आंदोलनकारी चिढ़ गए और उन्होंने सिपाहियों को प्रतिकार-स्वरूप कुछ कह दिया।

अंग्रेज सिपाही भला अपमान कैसे सह सकते थे। थानेदार का आदेश पाते ही वे जुलूस पर फायरिंग करने लगे। फायरिंग से एक आंदोलनकारी वहीं ढेर हो गया। सहनशीलता की सीमा टूट चुकी थी; आंदोलनकारी भड़क उठे और पुलिस पर टूट पड़े। सिपाही संख्या में बहुत कम थे, अतः जान बचाकर चौकी में जाकर छिप गए। लेकिन वे काल को आमंत्रण दे चुके थे। आंदोलनकारियों को शांत करना अब असंभव था। देखते-ही-देखते उन्होंने चौकी को आग लगा दी, जिसमें अनेक सिपाही जीवित ही जल गए।

इस घटना से गांधीजी बहुत आहत हुए। असहयोग आंदोलन में वे अहिंसा को आत्मा के समान मानते थे। उन्हें विश्वास था कि इस आत्मशक्ति के बल पर वे अंग्रेजों को झुकने के लिए विवश कर देंगे। लेकिन जब आत्मा ही नष्ट हो जाए तो सारा शक्तिपुंज नष्ट हो जाता है। उन्हें लगने लगा कि देश अहिंसक आंदोलन के लिए अभी परिपक्व नहीं हुआ है, अतः उन्होंने असहयोग आंदोलन को समाप्त करने की घोषणा कर दी।

चौरीचौरा में घटित दुःखद घटना की जिम्मेदारी उन्होंने अपने सिर ले ली। अंततः 10 मार्च, 1922 को उन्हें बंदी बना लिया गया और राजद्रोह का मुकदमा चलाकर छह वर्ष की सजा सुना दी गई।

## नरम से गरम दल की ओर

होली अच्छी तरह से भड़क उठी थी। महीन-मुलायम एवं कीमती विदेशी कपड़े तथा वस्तुएँ उसमें स्वाहा हो रहे थे। अग्नि की लपटें इस प्रकार उठ रही थीं, मानो गुलामी की बेड़ियों को जला डालने के लिए बेचैन हो उठी हों।

''भगत, विदेशी कपड़ों की यह एक और गठरी गई।'' जयदेव ने पीठ पर लदी रंग-बिरंगे कपड़ों की बड़ी-सी गठरी को आग में झोंक दिया।

भगतसिंह प्रसन्न हो उठे। तीन दिन पहले उन्होंने यज्ञ रूपी इस होली का आरंभ किया था। तब से यह निरंतर जल रही थी। जयदेव और अन्य साथी घर-घर जाकर विदेशी कपड़े एवं वस्तुएँ एकत्रित करते और आग में समर्पित कर देते। इस हवन-सामग्री को पाकर अग्नि और भी तेजी से प्रज्वलित हो उठी।

जयदेव और अन्य मित्र पुनः ईंधन लाने चले गए, जबकि भगतसिंह होली

की रक्षा करते हुए वहीं बैठे रहे। आग की लाल-पीली रोशनी में उनका सुंदर चेहरा देशभक्ति से चमक उठा। उन धधकती हुई ज्वालाओं को देखते हुए भगतसिंह सोच रहे थे कि ये लपटें इतनी अधिक भड़कनी चाहिए, जिसमें संपूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य और गुलामी की बेड़ियाँ जलकर भस्म हो जाएँ।

अन्यायी, अत्याचारी और दमनकारी ब्रिटिश सरकार को नष्ट करने हेतु गांधीजी द्वारा चलाए गए असहयोग आंदोलन में सम्मिलित होने के लिए उन्होंने नौवीं कक्षा में पढ़ाई छोड़ दी थी। न केवल पढ़ाई छोड़ी, बल्कि स्वयं को पूरी तरह से आंदोलन को समर्पित कर दिया। लेकिन एक वर्ष बीतने के बाद भी स्वराज की आहट तक सुनाई नहीं दे रही थी। स्वदेशी का व्रत स्वीकारना अच्छा था, लेकिन इससे क्या यह सरकार नष्ट हो सकती है— भगतसिंह के मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था। परंतु उन्हें विश्वास था कि जब सभी लोग एकजुट हो जाएँगे तो अंग्रेजों को यह देश छोड़कर जाना ही पड़ेगा।

तभी जयदेव और अन्य मित्र लौट आए। उन्हें खाली आते देख भगतसिंह ने थोड़ा विस्मित होकर प्रश्न किया, ''यह क्या, होली के लिए ईंधन नहीं लाए?''

बिना कोई उत्तर दिए वे भगतसिंह के पास जमीन पर ही पैर पसारकर बैठ गए। सभी के चेहरों पर चिंता की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। भगतसिंह उनका हौसला बढ़ाते हुए बोले, ''चिंता मत करो, दोस्तो! अगर कपड़े नहीं मिले तो कोई बात नहीं। हम कल दूसरे गाँव जाकर वहाँ होली जलाएँगे।''

''बस, अब हमें कहीं और जाने की जरूरत नहीं है।'' झंडासिंह ने थोड़ा चिढ़कर कहा।

''मित्र, इतनी जल्दी हिम्मत हार गए? अभी तो जंग शुरू हुई है। हमें इस आंदोलन को कोने-कोने में फैलाना है; मातृभूमि की सेवा करनी है। इसके लिए हमें कड़ी दौड़-धूप करनी पड़ेगी।'' भगतसिंह ने उसे समझाया।

''नहीं भगतसिंह, मातृभूमि की सेवा करना हमारे भाग्य में नहीं है। जंग शुरू होने से पहले ही बंद हो गई है।'' झंडासिंह ने कमजोर स्वर में कहा।

''मैं कुछ समझा नहीं! जो कहना है, स्पष्ट कहो।''

''गांधीजी ने आंदोलन स्थगित कर दिया है।'' झंडासिंह ने दो-टूक शब्दों में कहा।

''आंदोलन स्थगित कर दिया है! यह तुम क्या कह रहे हो? उन्होंने ऐसा

क्यों किया?'' भगतसिंह आश्चर्य में भरकर बोले।

''गांधीजी अहिंसा के मार्ग पर चलकर परस्पर सामंजस्य द्वारा स्वराज प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन चौरीचौरा में आंदोलनकारियों द्वारा पुलिस चौकी को जलाने से वे बुरी तरह आहत हुए। उनका कहना था कि आंदोलन में हिंसा होते ही उसकी उपयोगिता समाप्त हो गई। इसलिए उन्होंने आंदोलन स्थगित कर दिया।'' जयदेव ने निराश स्वर में कहा।

''इतने बड़े देश में कोई भी अनहोनी हो सकती है। इतना अन्याय और नृशंस अत्याचार होने पर किसी का भी संयम टूट सकता है। लेकिन उसे लेकर देशव्यापी आंदोलन को रोक देना उचित नहीं है। कुछ लोगों की अव्यावहारिकता का दंड संपूर्ण देश क्यों भोगे? अब जब परिणाम आने ही वाला था, ऐसी स्थिति में आंदोलन का स्थगन किसी भी तरह उपयुक्त नहीं है।''

तभी एक अन्य मित्र थोड़ा क्रोध करते हुए बोला, ''हम स्कूल, घर-परिवार सबकुछ छोड़कर आंदोलन में कूद पड़े। हमने यह मार्ग देश-सेवा के लिए चुना है, देश को आजाद करवाने के लिए चुना है। लेकिन सिद्धांतों की बात करके हमारे हाथ बाँध दिए गए हैं।''

'अब आगे क्या किया जाए? जैसे को तैसे वाली नीति अपनाकर ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाए या अन्याय को सहते हुए शत्रु के हृदय-परिवर्तन की प्रतीक्षा की जाए?'– वहाँ उपस्थित प्रत्येक युवक के मन में यही प्रश्न कुलबुला रहा था।

भगतसिंह गहरी सोच में डूबे हुए थे। एक-दो उपद्रवी घटनाओं के चलते आंदोलन को स्थगित करना उनकी दृष्टि में उचित नहीं था। ऐसा करना हिंसा और अहिंसा के द्वंद्व में फँसकर राष्ट्रहित की अवहेलना के समान था। इसके स्थान पर आंदोलन के उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित कर उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करना आवश्यक था। उनके मस्तिष्क में उन्नीस वर्षीय वीर युवक सरदार करतार सिंह सराबा का चेहरा घूम रहा था, जो अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करने के आरोप में पकड़ा गया था। बाद में मुकदमा चलाकर उसे फाँसी की सजा दी गई। लेकिन इससे भी उसके चेहरे पर कोई शिकन नहीं आई; अपितु उसने हँसते-मुसकराते दंड को स्वीकार किया।

तभी वे आवेश में भरकर बोले उठे, ''आत्यंतिक अहिंसा के मार्ग का अनुसरण हमारे वश में नहीं है। मैंने अमृतसर का नरसंहार देखा है, अंग्रेज सैनिकों द्वारा लोगों पर होनेवाले पाशविक और नृशंस अत्याचार देखे हैं। उन्होंने निहत्थे

लोगों को बुरी तरह से तड़पा-तड़पाकर मार डाला। मैं उन्हें अवश्य सबक सिखाऊँगा। शहीदों के खून का बदला खून से लिया जाएगा। यह होली बुझती है तो बुझ जाने दो। लेकिन शहीदों द्वारा प्रज्वलित किए यज्ञकुंड को मैं बुझने नहीं दूँगा। जब तक मेरे प्राण रहेंगे, तब तक यह यज्ञकुंड प्रज्वलित रहेगा। इसके लिए मैं अपने प्राणों की आहुति देने से भी पीछे नहीं हटूँगा!''

इस प्रकार नरम दल से अपना क्रांतिकारी जीवन आरंभ करनेवाले भगतसिंह गरम दल की ओर अग्रसर हो गए।

□

अध्याय 6

# क्रांति के बीज

असहयोग आंदोलन स्थगित हो चुका था। लेकिन इससे उन हजारों विद्यार्थियों के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लग गया, जो पढ़ाई छोड़कर आंदोलन से जुड़े थे। उन्हीं दिनों ऐसे विद्यार्थियों के हितार्थ अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। इनमें गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय आदि प्रमुख थे। इसी तरह का एक विद्यालय लाहौर में भी खोला गया। इसका नाम था— पंजाब नेशनल कॉलेज। इसकी स्थापना पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ने की थी। इसके पीछे उनका उद्देश्य युवाओं को राजनीति की शिक्षा देना था।

इस कॉलेज में अधिकतर उन्हीं विद्यार्थियों ने दाखिला लिया था, जो गांधीजी के आह्वान पर स्कूल-कॉलेज छोड़कर आंदोलन से किसी-न-किसी रूप में जुड़ गए थे। उनके मन राजनीतिक उत्तेजना और राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण थे।

कॉलेजों में श्रेष्ठ शिक्षाविद् का होना उसकी दूसरी विशेषता थी। वे छात्रों को सरकारी नौकरी या सरकार की चापलूसी करना नहीं सिखाते थे, वरन् उनका उद्देश्य विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना को उभारकर उन्हें राष्ट्रीय नेतृत्व के लिए तैयार करना था।

कॉलेज की तीसरी विशेषता में उनके पाठ्यक्रम की विषय-सामग्री शामिल थी। वहाँ पढ़ाए जानेवाला पाठ्यक्रम अंग्रेजी प्रधानतावाले कॉलेजों की तरह पुराना या अंग्रेजों का यशोगान करने की अपेक्षा सरस, सजीव, ज्ञानवर्द्धक तथा विकसित था। इसमें न केवल भारतीय इतिहास का विस्तृत लेखा-जोखा था, बल्कि विश्व इतिहास के बारे में भी विस्तारपूर्वक जानकारी दी गई थी। इतना ही नहीं, भारत के गुलाम बनने से लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए किए जानेवाले संघर्षों के विषय में भी विद्यार्थियों को अवगत कराया जाता था।

इस प्रकार पंजाब नेशनल कॉलेज युवाओं के लिए राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा स्रोत बन गया था।

## नेशनल कॉलेज में प्रवेश

असहयोग आंदोलन के कारण भगतसिंह ने नौवीं कक्षा की पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी थी। आंदोलन स्थगित होने के बाद उन्होंने अपनी अधूरी शिक्षा पूर्ण करने का निश्चय किया। यद्यपि उनकी ज्ञान-साधना निरंतर जारी थी। उनके घर पर सरदार अजीतसिंह, सूफी अंबा प्रसाद, लाला हरदयाल जैसे क्रांतिकारी चिंतकों का साहित्य उपलब्ध था, जिसका उन्होंने गहनता से अध्ययन किया था। लेकिन उनके लिए इतना ही काफी नहीं था। स्कूल जाना अब संभव नहीं था और बिना मैट्रिक पास किए कॉलेज में एडमिशन नहीं मिल सकता था। इस स्थिति ने भगतसिंह को उलझा दिया था। वे मन-ही-मन दु:खी थे, बेचैन थे।

संसार में एकमात्र माता-पिता ही ऐसे होते हैं, जो अपनी संतान के दु:ख-सुख को सहज ही जान लेते हैं। पुत्र की मनोदशा को सरदार किशनसिंह भी भाँप गए। अंतत: इस समस्या के निवारण के लिए वे नेशनल कॉलेज में अध्यापन कार्य करनेवाले भाई परमानंद से मिले और उन्हें सारी बात बताई।

भाई परमानंद राजनीतिक विद्रोह के दंडस्वरूप कालेपानी की सजा भोगकर आए थे। साधारण रहन-सहन, सुंदर आकृति, मधुर स्वर, सौम्य स्वभाव, आदर्शवादिता– ये वे गुण थे जिनके कारण भाई परमानंद लोगों के बीच 'देवता-स्वरूप भाई परमानंद' के नाम से प्रसिद्ध थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन के साथ पीड़ा और यातना सहन करने के एक महान् प्रतीक बन गए थे।

भगतसिंह जैसे प्रतिभावान् और देशभक्ति से परिपूर्ण युवक का जीवन इस प्रकार व्यर्थ हो रहा है, यह सुनकर भाई परमानंद ने व्याकुल होकर कहा, ''किशनसिंहजी, आपने यह बात पहले क्यों नहीं बताई? लाला लाजपतरायजी ने यह कॉलेज ऐसे ही युवकों को राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए खोला है। आप कल भगतसिंह को ले आइए। मैं स्वयं उसके अध्ययन को देखूँगा और फिर निर्णय लूँगा कि उसे कब प्रवेश देना है।''

भाई परमानंद के बारे में भगतसिंह ने बहुत कुछ सुन रखा था और उनके मन में उनके लिए असीमित आदरभाव था। उन्होंने गदर आंदोलन में करतार सिंह, विष्णु गणेश पिंगले, लाला हरदयाल जैसे क्रांतिकारियों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर कार्य किया था। इसके लिए वे कालेपानी की कठोर सजा भी भोग

चुके थे। ऐसे महान् क्रांतिकारी का सान्निध्य मिलने की बात सोचकर भगतसिंह आनंदित हो रहे थे। भाई परमानंद मनुष्य को बहुत गहरे उतरकर परखते हैं। क्या वे उनकी कसौटी पर खरे उतर सकेंगे– यह भय भी भगतसिंह को मन-ही-मन खाए जा रहा था। इसी असमंजस की स्थिति में अगले दिन भगतसिंह उनके कक्ष में प्रविष्ट हुए।

''आओ भगतसिंह, बैठो।'' भाई परमानंद ने मुसकराते हुए कहा।

दरवाजे पर ठिठके भगतसिंह के कानों में मधुर स्वर गूँजा। इतनी मधुरता और आत्मीयता पाकर वे थोड़े संयत हुए। मन का भय छू-मंतर हो गया। आगे बढ़कर उन्होंने प्रणाम किया और संकेतित कुरसी पर बैठ गए।

भाई परमानंद लंबे, छरहरे और तेजस्वी भगतसिंह को एकटक देखते रहे। उनकी आँखों ने पल भर में ही उनके अंतर्मन और व्यक्तित्व को पढ़ लिया। मन-ही-मन उन्होंने निर्णय लिया, 'यह हीरा हमारे कॉलेज में ही होना चाहिए।'

भगतसिंह बड़ी व्याकुलता से उनके द्वारा पूछे जानेवाले प्रश्न की प्रतीक्षा कर रहे थे, जबकि वे स्नेहवश उन्हें ही निहार रहे थे। भगतसिंह थोड़े हड़बड़ा गए। तभी भाई परमानंद हँसते हुए बोले, ''तुम्हें देखकर मुझे तुम्हारे चाचा अजीतसिंह याद आ गए। वे भी तुम्हारी तरह बहुत तेजस्वी थे। अच्छा, तुमने क्या-क्या पढ़ा है?''

भगतसिंह ने अब तक पढ़े हुए सारे ग्रंथों के बारे में बताया। वे एक-एक विषय को सहजतापूर्वक लेकर बात करते हुए भगतसिंह के अध्ययन की गहराई को नाप रहे थे।

कुछ देर बाद भाई परमानंद उठे और भगतसिंह की पीठ को प्रेमपूर्वक थपथपाते हुए बोले, ''कल से तुम कक्षा में बैठना आरंभ कर दो। मैं कुछ किताबों के नाम बताऊँगा, तुम उनका अध्ययन करो। दो महीने बाद मैं पुनः तुम्हारी परीक्षा लूँगा। लेकिन तुम अंग्रेजी पर अधिक ध्यान दो।''

''जी।'' यह कहकर भगतसिंह उठे और कक्ष से बाहर चले गए।

ठीक दो महीने बाद भाई परमानंद ने भगतसिंह की परीक्षा ली और उनके स्वाध्याय से संतुष्ट होकर उन्हें नेशनल कॉलेज में प्रवेश दे दिया।

## श्रेष्ठ प्रोफेसरों का सान्निध्य

भाई परमानंद के अतिरिक्त नेशनल कॉलेज में अनेक श्रेष्ठ प्रोफेसर थे।

इनमें कॉलेज के प्रधानाचार्य आचार्य श्री जुगलकिशोर सबसे प्रमुख थे। यद्यपि वे विलायत से शिक्षा प्राप्त करके आए थे, परंतु स्वतंत्र देश की मानसिक उन्मुक्तता से ओतप्रोत थे। देशभक्ति और राष्ट्रीयता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। चूँकि कॉलेज में विभिन्न धर्मों एवं जातियों के युवक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, इसलिए वहाँ के वातावरण को सहज बनाने तथा उसे कट्टरवाद से दूर रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यह उनके अथक परिश्रम और बुद्धिमत्ता का ही परिणाम था कि नेशनल कॉलेज अपनी पहचान बनाने में सफल हुआ।

श्री जयचंद्र विद्यालंकार कॉलेज के दूसरे महत्त्वपूर्ण स्तंभ थे। वे भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक तथा इतिहास के मौलिक एवं गहरे विद्वान् थे। अध्यापन के समय वे छात्रों में विभिन्न विषयों को लेकर जिज्ञासा जगाते थे। तथ्यों, निष्कर्षों तथा सत्य को आदेश के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा वे उन्हें तर्क की कसौटी पर परखने की प्रवृत्ति पर जोर देते। यही उनके अध्यापन की विशेषता भी थी। इससे विषय सहज हो जाता और उसकी रोचकता भी बनी रहती। प्रोफेसर जयचंद्र का संबंध क्रांतिकारियों के साथ भी था। भगतसिंह के प्रति उनके हृदय में विशेष स्नेह था। विश्व भर में घटित होने वाली घटनाओं तथा विभिन्न क्रांतियों के बारे में बताकर वे यदा-कदा उनका मार्गदर्शन किया करते थे। यदि यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वे भगतसिंह के राजनीतिक गुरु थे। उनके सान्निध्य में भगतसिंह ने अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अध्ययन किया।

## सुखदेव से मित्रता

तेजयुक्त चेहरा, चमकती आँखें, सौम्य मुसकराहट— दुर्बल शरीर होने के बाद भी सुखदेव के व्यक्तित्व में गजब का आकर्षण था। 15 मई, 1907 को पंजाब के लुधियाना शहर के नौगरा मोहल्ले में जनमे सुखदेव का पूरा नाम 'सुखदेव थापर' था। उनके पिता का नाम रामलाल था। बचपन से ही सुखदेव ने अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए जानेवाले नृशंस अत्याचारों को देखा था। उनकी दमनकारी नीतियों ने ही उनके मन में विद्रोह के बीज बो दिए थे। युवा होने पर उन्होंने नेशनल कॉलेज में दाखिला लिया और विभिन्न विषयों का अध्ययन करने लगे।

भगतसिंह ने प्रथम बार कक्षा में प्रवेश किया तो प्रोफेसर ने उन्हें सुखदेव के साथ बैठने को कहा। भगतसिंह चुपचाप उनके साथ जाकर बैठ गए।

कक्षा में भारत की तत्कालीन स्थिति और उसके कारणों की विवेचना हो रही थी। बीच-बीच में प्रोफेसर छात्रों के दृष्टिकोण भी जान लेते थे। इस संदर्भ में भगतसिंह एवं सुखदेव ने सबसे अधिक प्रश्न करते हुए विभिन्न प्रगतिवादी विचारों को प्रस्तुत किया। मन-ही-मन वे दोनों एक-दूसरे की विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता से प्रभावित हो चुके थे।

कक्षा समाप्त होने के बाद भगतसिंह और सुखदेव के बीच खुलकर बातें होने लगीं। राष्ट्रीयता, देशभक्ति, बलिदान, क्रांति आदि के संबंध में उनके विचार परस्पर एक समान थे। युवा होने के कारण दोनों में ही देश के लिए कुछ कर गुजरने की भावना हिलोरें ले रही थीं। भगतसिंह की तरह सुखदेव भी मातृभूमि हेतु सर्वस्व न्योछावर करने के लिए दृढ़ संकल्प थे।

इस प्रकार दोनों युवकों की प्रथम मुलाकात ही मित्रता में परिवर्तित हो गई। यह मित्रता इतनी प्रगाढ़ थी कि जीवन के अंतिम क्षणों तक वे साथ-साथ रहे।

## नेशनल नाटक क्लब

नेशनल कॉलेज का वातावरण चमक-दमक से दूर सीधा-सादा था। भगतसिंह यहाँ पूरी तरह से रम गए। धीरे-धीरे उनकी पहचान सादे वस्त्रोंवाले युवक के रूप में होने लगी। उनके कपड़े अस्त-व्यस्त होते। फटे-पुराने वस्त्र पहनने से भी उन्हें परहेज नहीं होता। लेकिन ऐसे में भी उनके हाथ पुस्तकों से भरे होते। वे अपने सारे कार्य स्वयं ही संपन्न करते थे।

राष्ट्रीय एवं सामाजिक कार्यों के साथ-साथ नाट्यकला में भी भगतसिंह का विशेष रुझान था। विद्यार्थी जीवन के दौरान उन्होंने कॉलेज में नेशनल नाटक क्लब की स्थापना की। इसके अंतर्गत उन्होंने महाराणा प्रताप, भारत-दुर्दशा, चंद्रगुप्त आदि नाटकों का सफल मंचन किया। इसमें उन्होंने महत्त्वपूर्ण किरदार निभाकर अपने अभिनय से लोगों को प्रभावित किया। चंद्रगुप्त में उन्होंने चंद्रगुप्त मौर्य का इतना सजीव अभिनय किया कि भाई परमानंद भावुक होकर मंच पर चढ़ गए और भगतसिंह को गले लगाकर उन्हें 'वर्तमान समय का चंद्रगुप्त' कहकर संबोधित किया।

नाटकों द्वारा भगतसिंह का मुख्य उद्देश्य लोगों को उनकी संस्कृति एवं इतिहास से परिचित करवाना तथा उनमें देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता के बीज बोकर उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट करना था। लेकिन सरकार को यह स्वीकार नहीं

था कि सोए हुए भारतीय नींद से जागकर ब्रिटिश साम्राज्य के लिए खतरा बनें। अत: उसने नेशनल नाटक क्लब को प्रतिबंधित कर दिया।

## विचारकों का प्रभाव

नेशनल कॉलेज के अतिरिक्त लाला लाजपतराय ने 'द्वारकादास पुस्तकालय' की स्थापना की थी। यहाँ सभी प्रकार का देशी-विदेशी साहित्य सुलभ था। भगतसिंह को बचपन से ही पुस्तकों से विशेष लगाव था। घर में रखा हुआ सारा साहित्य वे पहले ही घोटकर पी चुके थे; परंतु उनकी ज्ञान-पिपासा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, अत: वे पुस्तकालय के नियमित सदस्य बन गए। इसके अध्यक्ष राजाराम शास्त्री थे, जो बाद में उत्तर प्रदेश के मजदूर नेता और कौंसिल के सदस्य बने।

कुछ ही दिनों में राजाराम और भगतसिंह के बीच मित्रवत् संबंध बन गए। भगतसिंह उनके परामर्शानुसार विभिन्न विचारकों की पुस्तकों का अध्ययन करने लगे। इनमें से अधिकतर पुस्तकें विदेशी दार्शनिकों एवं विचारकों द्वारा लिखी गई थीं। इनके अध्ययन ने भगतसिंह को एक नई सोच और नई विचारधारा दी; उनकी बौद्धिकता एवं विद्वत्ता का अभूतपूर्व विकास हुआ। एक ओर कार्ल मार्क्स के समाजवादी सिद्धांतों ने उनके मन पर गहरा प्रभाव डाला, वहीं दूसरी ओर विख्यात रूसी अराजकतावादी बुकनिन की भी वे प्रशंसा करते थे। रूसी क्रांतिकारी बलिदान देकर अपने सिद्धांतों एवं आदर्शों का प्रचार करते थे। भगतसिंह को ऐसे क्रांतिकारियों ने सर्वाधिक प्रभावित किया। यही कारण था कि वे आतंकवाद एवं समाजवाद– दोनों विचारधाराओं के समर्थक थे।

एक दिन कुछ पुस्तकें पढ़ते समय राजाराम ने भगतसिंह को पास बुलाकर कहा, ''एक बहुत ही अच्छी पुस्तक आई है। मुझे विश्वास है कि तुम्हें अच्छी लगेगी।''

'पुस्तक' कहते ही भगतसिंह शीघ्र उनके पास की पुस्तक पर झपट पड़े। पुस्तक का नाम था– 'अनारकिज्म एवं अदर एसेज'।

''नाम तो बहुत ही आकर्षक है।'' यह कहकर भगतसिंह वहीं एक कोने में बैठ गए और किताब पढ़ने लगे।

उस पुस्तक में वर्णित 'हिंसा का मनोविज्ञान' नामक एक अध्याय में फ्रांस अराजकतावादी नवयुवक वेलाँ का बयान दिया गया था। वह बयान उसने अपनी गिरफ्तारी के बाद जज के सामने दिया था। उसमें कहा गया था कि उसने किस

प्रकार ट्रेड यूनियनों को संगठित किया, सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान दिए, शांतिमय प्रदर्शन किए। परंतु श्रमजीवियों का शोषण करनेवाले पूँजीपतियों पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। तब उन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उसने फ्रांस की असेंबली में बम फेंका।

वेलाँ का बयान अत्यंत भावुक और जोशीला था। उसे पढ़कर भगतसिंह अत्यंत प्रभावित हुए।

पुस्तक पढ़ने के बाद वे शास्त्रीजी से बोले, ''बहुत ही मार्मिक है, हृदयस्पर्शी है।''

''लेकिन क्या?'' शास्त्रीजी ने जानबूझकर पूछा।

''वेलाँ का बयान। आपने पढ़ा है न!'' 'हिंसा का मनोविज्ञान' निबंध में दिया गया फ्रांस के वेलाँ का बयान उन्होंने पढ़ा और सोचा कि हमें भी बहरों को सुनाने के लिए ऐसा ही कुछ करना चाहिए।

''अरे भगत भाई, यह पुस्तकालय है।''

भगतसिंह तत्काल होश में आ गए। उन्हें ध्यान ही न रहा कि इस पुस्तकालय पर पुलिसवालों की कड़ी नजर है। युवक यहाँ एकत्रित होकर क्रांति की प्रेरणा देनेवाली पुस्तकें पढ़ते हैं— इस बात की भनक उन्हें बहुत पहले ही लग चुकी थी। अब वे सबूत हाथ लगने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ आनेवाले सभी युवक यह बात जानते थे, इसलिए विशेष सावधानी बरती जाती थी। लेकिन आज अनजाने ही भगतसिंह का संयम टूटने लगा था।

फिर वे किताब अपने नाम पर लिखवाकर घर ले आए और उसके अत्यावश्यक अंशों को डायरी में नोट किया।

उन्होंने लगभग चौंसठ बार इस पुस्तक को लाइब्रेरी से निकलवाकर पढ़ा। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि समय आने पर वे भी वेलाँ के मार्ग का अनुसरण करेंगे।

□

अध्याय 7

# गृह-त्याग

प्रोफेसर जयचंद्र के माध्यम से भगतसिंह का परिचय बंगाल के क्रांतिकारियों के साथ हुआ। इनमें वे शचींद्रनाथ सान्याल से सबसे अधिक प्रभावित हुए। वे भी भगतसिंह को बहुत स्नेह करते थे तथा उनका मार्गदर्शन करते थे। इस प्रकार क्रांतिकारियों के साथ उनका संपर्क बढ़ने लगा।

वर्ष 1923 में भगतसिंह ने एफ.ए. पास करके आगे की पढ़ाई के लिए बी.ए. में प्रवेश लिया। परंतु परिवार में उनके विवाह को लेकर सुगबुगाहट होने लगी थी। भगतसिंह अपनी दादी जयकौर के बहुत लाड़ले थे। जगतसिंह की मृत्यु के बाद उन्होंने अपना सारा स्नेह भगतसिंह पर उड़ेल दिया था। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि मृत्यु से पूर्व वे अपने पोते का विवाह देख जाएँ। यद्यपि किशनसिंह अपने पुत्र के इरादों को जानते थे। फिर भी वे चाहते थे कि भगतसिंह विवाह करके खेतीबाड़ी के कार्य में जुट जाएँ। इसलिए उन्होंने उनका विवाह सरगोधा जिले के मानवाला गाँव में रहनेवाले सरदार तेजासिंह नामक एक अमीर सिख की बहन के साथ तय कर दिया। तेजासिंह एक बार भगतसिंह को देखना चाहते थे। किशनसिंह ने उनका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया; लेकिन अभी तक उन्होंने भगतसिंह को सगाई के विषय में कुछ नहीं बताया था।

निर्धारित दिन तेजासिंह अपने कुछ संबंधियों के साथ भगतसिंह से मिलने आ पहुँचे।

पुत्र का स्वभाव जानते हुए विद्यावती मन-ही-मन भयभीत हो रही थीं। उन्हें डर था कि कहीं भगतसिंह कोई ऐसी-वैसी बात करके होनेवाले संबंधियों को नाराज न कर दें। लेकिन घर में मेहमानों के आने से लेकर उनकी वापसी तक भगतसिंह बहुत अच्छी तरह से पेश आए। वे सभी के साथ हँसते-मुसकराते बातें कर रहे थे। पिता के कहने पर वे तेजासिंह को अपनी खेतीबाड़ी भी दिखा लाए थे। भगतसिंह ने अपने व्यवहार से सबका मन मोह लिया था। दोपहर को

भोजन करके उन्होंने थोड़ा आराम किया और फिर लौटने की तैयारी करने लगे। भगतसिंह ने ताँगा निकाला और मेहमानों को छोड़ने चल दिए।

चलने से पूर्व तेजासिंह ने किशनसिंह का हाथ पकड़कर गद्गद होते हुए कहा, ''भगतसिंह बहुत ही गुणी, खुशमिजाज और परिश्रमी है। मुझे विश्वास है कि मेरी बहन इस घर में हमेशा सुखी रहेगी। अब जल्दी ही सगाई की तारीख निश्चित कर लेंगे।''

सगाई की बात सुनकर भगतसिंह चौंक पड़े; लेकिन उस समय कुछ पूछना उन्हें उचित नहीं लगा, अतः उन्होंने चुपचाप घोड़े को सरपट दौड़ा दिया।

## विवाह से इनकार

मेहमानों को छोड़कर भगतसिंह शीघ्र लौट पड़े। उनका मन उद्विग्न था। वे जल्दी-से-जल्दी घर पहुँचकर पिता से अपने विवाह के बारे में बात करना चाहते थे।

घर पहुँचकर वे सीधे पिता के कमरे में गए और सीधे प्रश्न किया, ''पिताजी, आप तेजासिंहजी के साथ किसके विवाह की बात कर रहे थे?''

''मैंने तुम्हारा विवाह उनकी बहन के साथ तय कर दिया है। वे उसी के बारे में बात कर रहे थे।'' किशनसिंह ने मुसकराते हुए जवाब दिया।

''लेकिन मैं अभी विवाह नहीं करना चाहता।'' भगतसिंह ने सपाट शब्दों में कहा।

''लड़की सुंदर और गुणी है। फिर तुम विवाह क्यों नहीं करना चाहते?''

''जब तक मैं अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता तब तक विवाह नहीं करूँगा।'' भगतसिंह ने बात शीघ्र समाप्त करने के लिए कहा।

''इसके लिए तुम्हें कौन मना कर रहा है? शादी कर लो और फिर पैरों पर खड़े होने की कोशिश करो।'' किशनसिंह इतनी जल्दी पीछा छोड़ने वाले नहीं थे।

''लेकिन मैंने सुना है कि लड़की पढ़ी-लिखी नहीं है। कम-से-कम लड़की का मैट्रिक पास होना जरूरी है। मैं एक अनपढ़ लड़की से विवाह नहीं करूँगा।'' भगतसिंह ने दूसरा पैंतरा अपनाया।

''पढ़ी-लिखी लड़की क्या सबसे अलग होती है? क्या उसके बच्चे जन्मजात ही पढ़े-लिखे होते हैं? तुम्हारी दादी और माँ भी अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हैं। क्या उन्होंने घर-परिवार नहीं सँभाला?''

''लेकिन मैं विवाह नहीं करना चाहता। देश मुझे बुला रहा है। मैंने तन-मन-धन से राष्ट्र की सेवा करने की प्रतिज्ञा की है। हमारा परिवार देशभक्ति से परिपूर्ण है और मैं उन्हीं के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहता हूँ।'' भगतसिंह के मुख से सत्य बाहर आ ही गया।

''भगत, तुम्हारी दादी और माँ की इच्छा है कि तुम विवाह करो। इसलिए तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक विवाह के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इसी में उनका सम्मान है।'' किशनसिंह ने थोड़ा नरम होते हुए कहा।

''पिताजी, एक देशभक्त होने के बाद भी आप पारिवारिक भावनाओं को महत्त्व दे रहे हैं; जबकि संपूर्ण देश देशभक्तों से अपने उद्धार की आशा लगाए बैठा है। हमें उनके बारे में भी सोचना चाहिए।''

''भगत, इस विषय में मैं कोई बात नहीं सुनना चाहता। मैंने तेजासिंह को वचन दिया है, अब यह विवाह होकर ही रहेगा।'' किशनसिंह ने अपना निर्णय सुना दिया।

भगतसिंह ने पहले ही विवाह न करने का निर्णय ले लिया था। वे अपना संपूर्ण जीवन पारिवारिक बंधनों में न उलझाकर देश के लिए समर्पित करना चाहते थे और वे अपने निश्चय पर अटल थे। लेकिन इस समय उन्हें बचने का कोई भी मार्ग नहीं सूझ रहा था। ऐसी स्थिति में उन्हें शचींद्रनाथ का स्मरण हो आया। उन्होंने उसी समय कागज-कलम उठाया और एक पत्र लिखकर उन्हें अपनी स्थिति से अवगत कराया। साथ ही मार्गदर्शन करने की भी प्रार्थना की।

प्रत्युत्तर में शचींद्रनाथ ने भगतसिंह का मार्गदर्शन करते हुए कहा था, ''विवाह करना या न करना, यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर करता है। लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि विवाह के उपरांत देश के लिए बड़ा कार्य करना तुम्हारे लिए संभव नहीं होगा। पारिवारिक बंधन शनैः-शनैः तुम्हें इतना जकड़ लेगा कि तुम राष्ट्रीयता और देशभक्ति से बहुत दूर हो जाओगे। यदि तुमने स्वयं को देश के लिए समर्पित कर दिया है तो विवाह के बंधन को अस्वीकार कर दो। देश को तुम्हारी आवश्यकता है; लाखों लोगों की आशाएँ तुम पर टिकी हैं। उससे विमुख होकर विवाह करना देशद्रोह के समान है। भगत, यह प्रस्ताव अस्वीकार करने के बाद भी परिवार द्वारा तुम पर विवाह का दबाव निरंतर डाला जाता रहेगा। उचित यही है कि तुम घर-परिवार छोड़ दो। देशभक्तों को मातृभूमि के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग करने से भी पीछे नहीं हटना चाहिए। यदि तुम्हें यह बात स्वीकार हो तो मैं तुम्हारा मार्गदर्शन कर सकता हूँ।''

शचींद्रनाथ के पत्र ने भगतसिंह के भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

मन-ही-मन कुछ सोचते हुए वे अपने कमरे में जाकर सो गए।

## पंछी का पलायन

सूरज की किरणों ने जैसे ही धरती को छुआ, प्रकृति में चारों ओर हलचल आरंभ हो गई। पेड़-पौधे अँगड़ाइयाँ लेते हुए तनकर खड़े हो गए; मंद-मंद बहती हवाएँ उनके पत्तों को छूकर सरसराहट का शोर करने लगीं; पक्षियों की चहचहाहट से आकाश गूँजने लगा; नदियाँ कल-कल का मधुर तान छेड़ने लगीं। ऐसी ही हलचल सरदार किशनसिंह के घर में थी। भगतसिंह की सगाई का दिन तय हो चुका था। कितने वर्षों के बाद घर में फिर से शहनाई गूँजेगी, यह सोच-सोचकर जयकौर प्रसन्न हो रही थीं। पूरा घर सगाई की तैयारियों में जुट गया था।

''सूरज सिर पर चढ़ आया है, लेकिन अभी तक भगत सोकर नहीं उठा।'' जयकौर के कहने पर विद्यावती भगतसिंह को उठाने उनके कमरे में गईं, लेकिन बिस्तर खाली था।

'भगत सुबह-सवेरे टहलने गया होगा', यह सोचकर विद्यावती भी दैनिक कार्यों में लग गईं। लेकिन जब बहुत देर हो गई और भगतसिंह नहीं लौटे तो विद्यावती को चिंता होने लगी। उन्होंने परिवार के अन्य सदस्यों से भगतसिंह के बारे में पूछा, लेकिन किसी ने भी सुबह से उसे नहीं देखा था।

दोपहर को किशनसिंह भोजन करने बैठे तो विद्यावती ने धीरे से पूछा, ''आपने क्या भगत को कहीं भेजा है?''

''नहीं। क्यों, क्या हुआ?'' किशनसिंह ने चौंककर पूछा।

''सुबह से उसका का कोई अता-पता नहीं है। पहले तो बिना बताए कहीं नहीं गया। मुझे तो चिंता हो रही है।'' जयकौर ने सारी बात बताई।

''माँ, तुम चिंता मत करो। ऐसे ही दोस्तों के पास गया होगा। अभी थोड़ी देर में आ जाएगा।'' किशनसिंह ने हँसते हुए कहा।

''आ तो जाएगा; लेकिन इस प्रकार बिना बताए जाना ठीक नहीं है। कल उसकी सगाई है। लड़कीवालों को पता चलेगा तो वे क्या सोचेंगे? तुम उसे ढूँढ़कर मेरे पास ले आओ।'' जयकौर ने कहा।

''वह लाहौर में सुखदेव या भगवती के साथ ही होगा।'' विद्यावती ने ढूँढ़ने की जगह बता दी।

भोजन के बाद किशनसिंह लाहौर जाने के लिए तैयार हो गए। कुछ रुपए

साथ रखने के लिए उन्होंने अलमारी खोली तो विस्मित रह गए। वहाँ रुपए नहीं थे। उन्होंने विद्यावती से पूछा, परंतु निराशा हाथ लगी। किशनसिंह के मन में संदेह गहराने लगा। भगतसिंह और रुपयों का गायब होना उन्हें खटक रहा था। फिर भी तसल्ली करने के लिए उन्होंने पूरी अलमारी छान डाली, मेज पर रखी पुस्तकें उलट-पुलट दीं। लेकिन रुपए नहीं मिले। तभी उनकी दृष्टि मुड़े हुए एक कागज पर पड़ी।

किशनसिंह ने कागज उठा लिया। वह एक पत्र था, जो भगतसिंह ने अपने पिता के नाम लिखा था। पत्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा था–

पूज्य पिताजी,

नमस्ते!

अपनी जिंदगी मैं आजादी की लड़ाई के नाम कर चुका हूँ इसलिए मेरी जिंदगी में आराम और दुनिया के दूसरे आकर्षणों का कोई महत्त्व नहीं है।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापूजी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते-वतन के लिए सौंप दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूँ। उम्मीद है, आप मुझे माफ कर देंगे।

भगतसिंह

किशनसिंह का चेहरा सफेद पड़ गया; वे धम्म से नीचे बैठ गए। पत्र उनके हाथ से छूटकर पहले ही नीचे गिर चुका था। पति की ऐसी हालत देखकर विद्यावती भयभीत हो गईं। उन्होंने जल्दी से पत्र उठाया और धड़कते मन से पढ़ा। पत्र समाप्त होते-होते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। इस अप्रत्याशित आघात से पल भर वे कुछ भी बोल नहीं सकीं। फिर स्वयं को संयत करते हुए पति को लाहौर जाकर भगतसिंह को ढूँढ़ने के लिए कहा।

किशनसिंह टूटे स्वर में बोले, ''उसे ढूँढ़ने का कोई लाभ नहीं है। वह नहीं मिलेगा। अब तक तो वह लाहौर से भी कहीं दूर चला गया होगा।''

विद्यावती को उनकी बात ठीक लगी; पंछी आकाश में उड़ान भर चुका था और पीछे अपने निशान छोड़ गया था।

## ज्योतिषी की भविष्यवाणी

लाहौर में भगतसिंह के होने की बात असंभव थी। लेकिन फिर भी माँ के हृदय को समझाना किशनसिंह के वश में नहीं था। उनके मन में आस थी

कि उनका बेटा मिल जाएगा और वे माँ की इस आस को तोड़ना नहीं चाहते थे। अत: दोनों पति-पत्नी पुत्र की खोज में लाहौर पहुँच गए।

नेशनल कॉलेज में पूछताछ की गई; सुखदेव, भगवती व यशपाल से पूछा। किसी को उनकी कोई जानकारी नहीं थी। किशनसिंह का कथन सत्य था। भगतसिंह बहुत पहले ही लाहौर छोड़ चुके थे। लेकिन विद्यावती को विश्वास था कि वे लाहौर में ही हैं। इसी बीच वे ग्वालामंडी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास भी गईं। ज्योतिषी ने भगतसिंह का कोई कपड़ा लाने के लिए कहा।

दूसरे दिन भगतसिंह की एक पगड़ी लेकर विद्यावती पुन: ज्योतिषाचार्य के पास पहुँचीं।

ज्योतिषाचार्य ने पगड़ी को देखा और कुछ देर तक सोचने के बाद गंभीर स्वर में बोले, ''आपका पुत्र कुछ दिनों में ही लौट आएगा; लेकिन...''

पुत्र के लौटने की बात सुनकर विद्यावती के चेहरे पर प्रसन्नता के भाव आ गए। परंतु पंडितजी द्वारा 'लेकिन' शब्द सुनकर वे थोड़ी भयभीत होकर बोलीं, ''लेकिन क्या, पंडितजी?''

''लेकिन घर लौटने पर भी वह अधिक दिन तक आपके पास नहीं रहेगा। वह फिर से चला जाएगा।''

भगतसिंह के पुन: जाने की बात ने उन्हें सन्न कर दिया।

''पंडितजी, क्या उसे बाँधकर रखने का कोई उपाय नहीं है?'' विद्यावती ने आशा भरे नेत्रों से देखा।

पंडितजी बोले, ''आपके पुत्र की जिंदगी बड़ी अद्भुत है। उसका भाग्य बड़ी ही विचित्र स्थिति उत्पन्न करेगा। उसे बाँधकर रखना किसी के वश में नहीं है।''

''कैसी स्थिति, महाराज?'' विद्यावती ने उत्सुक होकर पूछा।

''वह या तो तख्त पर बैठेगा या फिर...'' पंडितजी एक पल के लिए चुप हो गए।

माँ का हृदय धड़का। उन्होंने डरते-डरते पूछा, ''या फिर क्या, पंडितजी?''

''या फिर तख्त पर झूलेगा।'' पंडितजी ने अपनी बात पूरी की।

विद्यावती की आँखों के आगे अँधेरा छा गया, हाथ-पैर काँपने लगे, चेहरा पसीने से नहा उठा। ऐसा लगा मानो सहस्रों सर्पों ने अपने विष को उनके शरीर में उतार दिया हो।

□

अध्याय 8

# छद्‍म वेश

घर छोड़ने के साथ भगतसिंह पूरी तरह से क्रांति की लड़ाई में कूद पड़े। शचींद्रनाथ के परामर्श पर वे लाहौर से भागकर कानपुर आ गए और 'बलवंत सिंह' के नाम से रहने लगे। यहाँ वे योगेशचंद्र चटर्जी के साथ काम कर रहे थे, जो कानपुर में क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालक थे। यहीं उनका परिचय सुरेशचंद्र भट्‍टाचार्य, बटुकेश्वर दत्त, अजय घोष तथा विजयकुमार सिन्हा जैसे क्रांतिकारियों के साथ हुआ। बाद में बटुकेश्वर दत्त ने भगतसिंह को बाँगला भाषा में पारंगत कर दिया। धन का अभाव था, इसलिए भगतसिंह अखबार बेचकर गुजर-बसर कर रहे थे। इसके अतिरिक्त छोटे-मोटे पत्रों में 'बलवंत सिंह' के नाम से उनके लेख भी प्रकाशित हो रहे थे।

भगतसिंह रामनारायण बाजार में रहते थे। यह बाजार बंगाली लोगों का गढ़ था। इतने बंगालियों के बीच में एक सिख का रहना किसी के भी संदेह का कारण बन सकता था। पुलिस के कुछ सिपाही भी उनके मकान के आस-पास टोह लेते दिखाई दिए थे। ऐसे में भगतसिंह को जगह बदलने की आवश्यकता थी।

इसी बीच 'प्रताप' प्रेस के संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी ने एक पत्र में बलवंत सिंह द्वारा लिखित लेख पढ़े। वे उनकी लेखनी से अत्यंत प्रभावित हुए। पूछताछ करने पर पता चला कि बलवंत सिंह उनकी प्रेस में कार्यरत सुरेशचंद्र भट्‍टाचार्य का परिचित है। उन्होंने उनसे बलवंत सिंह के विषय में पूछा।

प्रश्न सुनकर सुरेशचंद्र हड़बड़ा गए। फिर संयत होकर बोले, ''जी हाँ, बलवंत सिंह को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ।''

''लिखने के अतिरिक्त बलवंत सिंह कहीं नौकरी भी करता है?''

''अभी नहीं, उसे नौकरी की तलाश है। लेकिन वह वहीं नौकरी करेगा जहाँ रहकर वह देश की सेवा कर सके।''

‘‘ठीक है, कल आप उन्हें यहाँ ले आइए। मैं उनके रहने की व्यवस्था यहीं कर दूँगा।’’

‘‘लेकिन पुलिस की उन पर कड़ी नजर है।’’ सुरेशचंद्र ने संदेह प्रकट किया।

‘‘आप चिंता न करें। मैं पत्रकारिता के कार्य से उन्हें दिल्ली भेज दूँगा।’’ गणेशशंकर विद्यार्थी ने उनके संदेह का निवारण किया।

## ‘प्रताप’ में नौकरी

उसी शाम सुरेशचंद्र ने भगतसिंह को बताया कि कल दोपहर गणेशशंकर विद्यार्थी ने उन्हें ‘प्रताप’ के कार्यालय में बुलाया है। उन दिनों ‘प्रताप’ समाचार-पत्र बहुत लोकप्रिय था। लोगों के बीच में उसकी गहरी पैठ थी। उसके संस्थापक गणेशशंकर विद्यार्थी का लोग हृदय से सम्मान करते थे। ऐसे महान् व्यक्ति ने उन्हें मिलने के लिए क्यों बुलाया है, यह सोचकर भगतसिंह विस्मित थे।

निर्धारित समय पर भगतसिंह उनके सामने जा पहुँचे। विद्यार्थीजी के संकेत पर वे एक कुरसी पर बैठ गए। दोनों के बीच में वार्त्तालाप आरंभ हुआ।

प्रश्न विद्यार्थीजी ने आरंभ किया, ‘‘बलवंत, आपने कहाँ तक शिक्षा ग्रहण की है?’’

‘‘मैं बी.ए. प्रथम वर्ष तक ही पढ़ा हूँ।’’

‘‘मैंने सुना है कि आप बड़ी कुशाग्र बुद्धि के हैं। फिर बीच में कॉलेज क्यों छोड़ दिया?’’ विद्यार्थीजी ने अगला प्रश्न किया।

‘‘कुछ पारिवारिक समस्या के कारण।’’

‘‘आपकी लिखने में रुचि है?’’

‘‘जी हाँ। मैं हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू में लिख लेता हूँ।’’

विद्यार्थीजी द्वारा पूछे गए प्रश्न व्यक्तिगत थे। ‘कहीं ये मेरी वास्तविकता तो नहीं जान गए? यहाँ से जल्दी चले जाना ही मेरे लिए उचित है।’ यह सोचकर वे उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर बोले, ‘‘अच्छाजी, अब मैं चलता हूँ।’’

‘‘अभी आप कैसे जा सकते हैं?’’ विद्यार्थीजी ने मुसकराते हुए कहा।

भगतसिंह का दिल धड़का। अब ये उन्हें पकड़कर घर भेज देंगे। चेहरे पर घबराहट दिखने लगी। यह देखकर विद्यार्थीजी उठे और हँसते हुए उनका कंधा थपथपाकर बोले, ‘‘हमारा दफ्तर शाम को बंद होता है। तब तक आप यहीं

काम करें। आपकी नौकरी आज से ही शुरू हो गई है। लेकिन क्या आप यहाँ काम करना पसंद करेंगे?''

''आपके साथ काम करना मेरा सौभाग्य होगा। मैं सहर्ष तैयार हूँ।'' भगतसिंह ने स्वीकृति दे दी। इस प्रकार भगतसिंह 'प्रताप' में काम करने लगे।

इसी बीच दिल्ली में दंगे हुए। गणेशशंकर विद्यार्थी ने भगतसिंह को 'प्रताप' का संवाददाता बनाकर दिल्ली भेजा। भगतसिंह ने इस कार्य को पूरी ईमानदारी और निष्ठा से पूर्ण किया। दंगों पर लिखा गया उनका लेख 'प्रताप' के दो अंकों में प्रकाशित हुआ। यह लेख इतना प्रभावशाली था कि पत्र के प्रकाशन के साथ ही 'बलवंत सिंह' का नाम लोगों की जुबान पर चढ़ गया।

## कानपुर से पलायन

चूँकि 'प्रताप' क्रांतिकारियों से जुड़ा हुआ समाचार-पत्र था, इसलिए इसमें विभिन्न प्रकार का क्रांतिकारी साहित्य प्रकाशित होता था। यहाँ नौकरी करते हुए भगतसिंह का संपर्क अनेक क्रांतिकारियों से हुआ। स्वयं गणेशशंकर विद्यार्थी भी क्रांतिकारी विचारधारा के सूत्रधार थे, अत: वे अकसर भगतसिंह को ज्वलंत लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित करते थे। सहयोग पाकर भगतसिंह ने अपनी लेखनी का मुख खोल दिया और जोशीले लेख लिख-लिखकर लोगों को जागरूक करने लगे।

दशहरा निकट आ गया था। इस उपलक्ष्य में प्रतापगढ़ में एक विशाल मेला लगता था, जिसे दूर-दराज से लोग देखने आते थे। अवसर उपयुक्त था; प्रताप प्रेस में विज्ञापनों के रूप में क्रांतिकारी साहित्य छापा गया और उसे मेले में बाँटने की जिम्मेदारी भगतसिंह को सौंपी गई। भगतसिंह पाँच साथियों के साथ छद्म वेश धारण करके मेले में पहुँचे और घूम-घूमकर विज्ञापन बाँटने लगे।

पुलिस को विश्वास था कि क्रांतिकारी इस मेले में किसी संदिग्ध कार्य को अंजाम दे सकते हैं। इसलिए सादे वस्त्रों में कुछ सिपाही मेले में घूम रहे थे। विज्ञापन पढ़कर वे सतर्क हो गए और भगतसिंह को साथियों सहित घेर लिया। लेकिन दस गीदड़ मिलकर भी एक सिंह का मुकाबला नहीं कर सकते। भगतसिंह का संकेत पाते ही उनके साथी सिपाहियों पर टूट पड़े। कुछ ही देर में सिपाही जमीन पर गिरे धूल चाट रहे थे और भगतसिंह साथियों सहित फरार हो चुके थे।

इस घटना के बाद से भगतसिंह अंग्रेज अधिकारियों की आँखों की किरकिरी बन गए। अब उनका कानपुर में रहना खतरे से खाली नहीं था। यह

बात गणेशशंकर विद्यार्थी भी भली-भाँति जान चुके थे। अत: उन्होंने उन्हें अलीगढ़ जिले के शादीपुर ग्राम के नेशनल स्कूल में हेडमास्टर बनाकर भेज दिया। उनके रहने की व्यवस्था वहीं के स्थानीय नेता ठाकुर टोलसिंह के घर कर दी गई। गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे परम विद्वान् एवं महान् क्रांतिकारी के सान्निध्य, प्रताप प्रेस के कार्यालय और कानपुर को अलविदा कहकर भगतसिंह अलीगढ़ की ओर प्रस्थान कर गए।

## संदेश

भगतसिंह के जाने के बाद से उनके घर में मातम छा गया था। उन्हें इस बात की बिलकुल उम्मीद नहीं थी कि विवाह के लिए दबाव डाले जाने पर भगतसिंह इतना कठोर कदम उठा लेंगे। परंतु होनी को भला कौन टाल सकता है! आकाश में उन्मुक्त विचरणवाले इस पंछी के जीवन में ईश्वर ने पारिवारिक सुख नहीं लिखा था। सबने किसी-न-किसी तरह से अपने आप को समझा लिया था। लेकिन दादी जयकौर का मन बोझ से दबा जा रहा था। उनकी जिद के कारण भगतसिंह को घर छोड़कर जाना पड़ा, इस बात से उन्हें गहरा सदमा लगा था। इसके फलस्वरूप उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। दिन-प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा था। पोते को देखने की इच्छा उन्हें अंदर-ही-अंदर बेचैन कर रही थी।

माँ के मन की बात किशनसिंह अच्छी तरह से जानते थे, अत: उन्होंने 'वंदे मातरम्' नामक समाचार-पत्र में एक विज्ञापन छपवाया— 'भगतसिंह जहाँ भी हैं, जल्दी लौट आएँ। उनकी दादीजी सख्त बीमार हैं।'

यह विज्ञापन गणेशशंकर विद्यार्थी ने भी पढ़ा था। लेकिन बलवंत सिंह के वास्तविक परिचय से वे अनभिज्ञ थे। उस समय तक भगतसिंह शादीपुर की ओर रवाना हो चुके थे, इसलिए वे भी इससे अनभिज्ञ रहे।

## अध्यापन

गाँव की सीमा पर 'शादीपुर' नामपट्ट देखकर भगतसिंह मन-ही-मन मुसकराए। लेकिन दूसरे ही क्षण उनका हँसमुख चेहरा उदासी से मुरझा गया। उनका घर, वहाँ के ममतामयी लोग उन्हें तीव्रता से याद आने लगे। उनके इस प्रकार चले आने से माँ, पिताजी, दादीजी, दादाजी, चाचीजी, अमरो— सब कितने दु:खी हुए होंगे। उनकी आँखें भर आईं। लेकिन फिर सँभलकर उन्होंने स्वयं को यादों से अलग किया और आगे बढ़ गए।

नया गाँव, नया घर, नया वातावरण, नया कार्य। ठाकुर टोलसिंह ने भगतसिंह की बहुत आवभगत की और उनके रहने के लिए एक साफ-सुथरे कमरे की व्यवस्था कर दी। धीरे-धीरे स्कूल के कामकाज में उनका मन रमने लगा। हँसमुख स्वभाव, प्रसन्नचित्त व्यवहार और सुदृढ़ता ने शीघ्र ही उन्हें छात्रों के बीच लोकप्रिय बना दिया। वे उनकी एक आवाज पर सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहते। उनके मार्गदर्शन में छात्र राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विषयों का अध्ययन करने लगे।

पढ़ाने के अतिरिक्त भगतसिंह ने स्कूल में वक्तृत्व सभा, निबंध प्रतियोगिता, खेल आदि पर भी सकारात्मक दृष्टिकोण स्थापित किया। वे उपलब्ध साधनों द्वारा बच्चों में देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना भरने लगे।

यद्यपि यहाँ भगतसिंह को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं थी, फिर भी मन बेचैन था। बार-बार घर की याद उनके मन-मस्तिष्क को झकझोर जाती। घर-परिवार के बारे में जानने के लिए वे व्याकुल हो उठते। साहस एकत्रित करके उन्होंने एक पत्र लिखा। लिखते समय उन्होंने केवल कुशल-मंगल लिखने का निश्चय किया था। लेकिन कागज पर लेखनी चली तो वे बहते चले गए। वे यह भी भूल गए कि यह पत्र अमरो के नाम है। घर छोड़ने का उद्देश्य, कानपुर में उठाई गई तकलीफें, घर के प्यार की कमी तथा पराए गाँव में रहने की बात– उन्होंने सबकुछ कागज पर उतार दिया।

पत्र लिखकर मन हलका हुआ। पुनः चिट्ठी पढ़ी। लेकिन इस बार मन की भावुकता बड़ी विचित्र महसूस होने लगी। तभी उन्हें दादीजी की जिद का स्मरण हो आया। घर पत्र लिखने का मतलब गृहस्थी के बंधनों में फँसने का भय था। उन्होंने उसी समय चिट्ठी फाड़कर फेंक दी।

बहुत दिनों तक स्वयं को रोकने के बाद अंततः उन्होंने अपने मित्र रामचंद्र को एक पत्र लिखा–"मैं यहाँ सकुशल हूँ। यहाँ के नेशनल स्कूल में मैं हेडमास्टर का कार्य कर रहा हूँ। लेकिन मुझे घर की चिंता हो रही है। इसलिए मेरे घर जाकर तथा सब हाल जानकर मुझे पत्र लिखना। दादीजी के स्वास्थ्य के बारे में भी सूचित करना। परंतु वहाँ किसी को मत बताना कि तुम्हें मेरी चिट्ठी मिली है और न ही किसी को मेरा पता बताना। तुम्हें मेरी कसम, हमारी दोस्ती की कसम।"

अगले दिन ही उन्होंने पत्र डाक में डाल दिया।

□

अध्याय 9

# घर वापसी

चौथे दिन पत्र रामचंद्र को मिल गया। पत्र में शीघ्र उत्तर देने के लिए लिखा हुआ था। अत: वे उसी समय तैयार होकर भगतसिंह के घर जा पहुँचे।

''कितने दिनों के बाद आए हो, बेटा!'' विद्यावती स्नेहयुक्त स्वर में बोलीं। सहसा भगतसिंह की याद आते ही उनकी आँखें डबडबा आईं। बेबेजी की आँखों का पानी देखकर रामचंद्र का मन भी भर आया। लेकिन वे कुछ करने में असमर्थ थे। भगतसिंह जो ठान लेते थे, उसे बदलना किसी के वश में नहीं था। तभी दादीजी ने आवाज मारकर उन्हें अंदर आने के लिए कहा।

''दादी माँ, तबीयत ठीक नहीं है?'' कहते हुए रामचंद्र ने उनके पैर छुए।

जयकौर को अपने पोते की याद आ गई। वह भी इसी तरह उनके पैर छुआ करता था। वे बिस्तर से थोड़ा उठते हुए बोलीं, ''राम, तुम अपने मित्र को ढूँढ़ लाओ न। उससे कहना कि हम उसके मन के खिलाफ कुछ नहीं करेंगे। लेकिन उसे यहीं हमारे पास आकर रहने को कहो।'' यह कहते-कहते जयकौर की आँखों से आँसू बहने लगे।

'विज्ञापन पढ़कर भी भगतसिंह घर नहीं लौटा था। क्या वह इतना नाराज हो गया है?' इस विचार ने जयकौर को बेचैन कर दिया था। वे स्वयं को इसका दोषी समझने लगी थीं।

उनकी यह दशा देखकर रामचंद्र के मन में एक बार सबकुछ बता देने का विचार आया। लेकिन अगले ही पल उन्हें भगतसिंह द्वारा दी गई कसम याद आ गई। होंठों तक आए शब्दों को उन्होंने बड़ी कठिनता से निगला। भगतसिंह का कुशलक्षेम बताने की उनमें हिम्मत नहीं थी। अत: वे भारी कदमों से बाहर आ गए।

तभी उन्हें जयदेव दिखाई दिए। वे तेजी से उनके पास पहुँच गए।

उन्हें देखकर जयदेव प्रसन्न होकर बोले, ''अरे रामचंद्र, इतने दिनों बाद मिल रहे हो! सब कुशल-मंगल है न?''

''मैं तो ठीक हूँ, लेकिन भगतसिंह के घर में सब दु:खी हैं। मुझसे उनका दु:ख देखा नहीं जाता।''

''वे भी क्या करें? भगतसिंह ऐसा गायब हुआ कि फिर लौटकर नहीं आया। न ही उसने अपने बारे में कोई पत्र लिखा।'' जयदेव अफसोस भरे स्वर में बोला।

''मैं उसके बारे में जानता हूँ। उसने मुझे पत्र लिखा है।''

''भगतसिंह ने तुम्हें पत्र लिखा है! तुम जाकर उसके परिवारवालों को क्यों नहीं बता देते?'' जयदेव उत्साहित होकर बोला।

''परंतु मैं चाहकर भी उसके परिवारवालों को कुछ नहीं बता सकता। अगर मैंने बताया तो वे उसके बारे में पूछेंगे और भगतसिंह ने मुझे उसका पता न बताने की कसम दी है।'' रामचंद्र ने अपनी विवशता बताई।

दोनों के बीच खमोशी व्याप्त हो गई।

सहसा रामचंद्र की आँखें चमक उठीं। वे जयदेव के कंधे पर हाथ रखकर बोले, ''कसम के कारण मैं भगतसिंह का पता तो नहीं बता सकता, लेकिन तुम्हें उस पते पर ले जरूर जा सकता हूँ।''

चूँकि पत्र में कानपुर का पता था, अत: दूसरे दिन ही वे दोनों गणेशशंकर विद्यार्थी के पास कानपुर जा पहुँचे।

पत्र की लिखावट से विद्यार्थीजी भली-भाँति परिचित थे। वे रामचंद्र को संबोधित करते हुए बोले, ''आजकल आपका मित्र शादीपुर गाँव के नेशनल स्कूल में हेडमास्टर का कार्य कर रहा है; लेकिन भगतसिंह के रूप में नहीं, बल्कि बलवंत के नाम से। अगर मुझे उसका वास्तविक परिचय पता होता तो 'वंदे मातरम्' में छपे किशनसिंह के विज्ञापन को देखकर मैं स्वयं उन्हें लेकर उनके घर पहुँच जाता।''

भगतसिंह का पता पाकर जयदेव और रामचंद्र उसी समय शादीपुर के लिए रवाना हो गए। गाँव पहुँचते ही वे सीधे स्कूल की ओर चल पड़े। उनका हृदय भगतसिंह को गले लगाने के लिए अधीर हो रहा था।

इधर भगतसिंह ने उन्हें आते देख लिया था। उनकी अधीरता देखकर वे सारी बात समझ गए। उन्होंने एक समझदार लड़के को बुलाया और उसे सारी

बात समझाकर वहाँ से चले गए।

लड़के ने जयदेव और रामचंद्र की उचित आवभगत की। उनकी व्याकुल नजरें भगतसिंह को इधर-उधर ढूँढ़ रही थीं। रामचंद्र से नहीं रहा गया तो उन्होंने लड़के से भगतसिंह के बारे में पूछा। लड़का पूरे विश्वास के साथ बोला, ''मास्टरजी के घर में बड़ा सा ताला लगा हुआ है। जरूर वे गाँव से बाहर गए होंगे। बीच-बीच में वे ऐसे ही दो-तीन दिन के लिए कहीं बाहर निकल जाते हैं।''

वे दोनों सोच में पड़ गए। जिस उम्मीद के साथ वे यहाँ आए थे, वह समाप्त हो चुकी थी। अंतत: दोनों उसी समय कानपुर लौट गए। मित्रों को जाते देख पेड़ की ओट में खड़े भगतसिंह की आँखें नम हो आईं। विधाता ने कैसा दिन दिखाया था? जिन मित्रों से मिले बिना उन्हें एक दिन भी चैन नहीं आता था, आज उन्हें बिना मिले ही लौटने पर विवश करना पड़ा।

## वापसी

कानपुर लौटकर रामचंद्र व जयदेव ने गणेशशंकर विद्यार्थी से सहायता की प्रार्थना की। विद्यार्थीजी ने उन्हें आश्वस्त किया कि वे जो संभव हो सकेगा, अवश्य करेंगे। इसके बाद वे गाँव लौट गए और किशनसिंह को सारी बात बताई।

इसके बाद सरदार किशनसिंह ने कानपुर के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता मौलाना हसरत मोहानी को पत्र लिखा कि वे विद्यार्थीजी से मिलकर भगतसिंह को घर भिजवाने का प्रयत्न करें। उन्होंने भगतसिंह के नाम भी एक पत्र लिखा। यह पत्र लेकर विद्यार्थीजी के साथ जयदेव रूठे हुए भगतसिंह को मनाने चल दिए।

उन्हें अकस्मात् शादीपुर में आया देखकर भगतसिंह सबकुछ समझ गए।

विद्यार्थीजी उन्हें समझाते हुए बोले, ''भगतसिंह, नाम बदलने से खून के रिश्ते नहीं बदल जाते। दिल में अपनों के लिए जो प्यार होता है, वह हमेशा वैसा ही बना रहता है। तुम्हारी दादी बहुत बीमार हैं। इसलिए सारी बात भूलकर इसी समय घर के लिए निकल जाओ। तुम्हारे परिवारवाले बड़ी बेसब्री से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

''लेकिन...'' भगतसिंह ने अटकते हुए इतना ही कहा।

''अब लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। तुम जैसा चाहोगे वैसा ही होगा। अपने पिताजी का यह पत्र पढ़ो।''

भगतसिंह ने पत्र ले लिया और पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—''बेटे भगत!

जल्दी घर लौट आओ। तुम्हारी दादीजी बहुत बीमार हैं। वे दवा नहीं लेतीं, सिर्फ तुम्हारा ही नाम जपती रहती हैं। हममें से कोई भी तुम्हारे विवाह की बात नहीं करेगा। तुम जो चाहो, वही करो। तुम्हारे सुख में ही हम सुखी हैं।''

टप-टप करते हुए आँसुओं की लड़ी आँखों से बह चली। लेकिन उनके होंठों पर संतोष की मुसकान थी।

छह महीने के वनवास के बाद भगतसिंह घर लौट आए थे। उनका घर फिर से हँसने लगा था, बोलने लगा था, खुशी से झूमने लगा था। भगतसिंह ने दादी की इतनी सेवा की कि वे कुछ ही दिनों में भली-चंगी हो गईं।

वे जान चुकी थीं कि ईश्वर की इस शक्ति को बाँधकर रखना अब किसी के वश में नहीं है। देश-प्रेम की धुन का पक्का उनका भागाँवाला पंख फैलाकर खुले आकाश में उन्मुक्त उड़ान भरेगा।

## अकाली आंदोलन

असहयोग आंदोलन की समाप्ति के तुरंत बाद ही अकाली आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इसकी बागडोर सिखों के हाथ में थी, जिसका आधार राजनीतिक न होकर सामाजिक था। उन दिनों गुरुद्वारों में भेंट-स्वरूप चढ़नेवाली धन-संपत्ति तथा गुरुद्वारों से जुड़ी जागीरों से होनेवाली आय पर उनके महंतों या उनके परिवार का अधिकार होता था। इन महंतों के स्वामित्व में ये गुरुद्वारे विलासिता के केंद्र बन चुके थे। गुरुद्वारों पर महंतों के पैतृक और व्यक्तिगत अधिकार को समाप्त करके गुरुद्वारों से जुड़ी संपत्ति को सिख समाज के सार्वजनिक नियंत्रण में लाना तथा इनकी आमदनी-खर्च का प्रबंध निर्वाचित पंचायतों द्वारा करना ही इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य था।

यद्यपि अकाली आंदोलन धर्म-सुधार से संबंधित था, जो गुरुद्वारों से अनाचार एवं स्वामित्व को समाप्त करना चाहता था; लेकिन इसकी भावना उग्र, सुधारवादी तथा बहुत कुछ क्रांतिकारी थी। इससे भगतसिंह अत्यंत प्रभावित हुए और इस आंदोलन में कूद पड़े।

अकाली आंदोलन से जुड़े आंदोलनकारी पहचान के रूप में सिर पर काली पगड़ी बाँधते थे। भगतसिंह का पारिवारिक वातावरण आर्यसमाज और उसकी विचारधाराओं से प्रभावित था, इसलिए वे न तो केश रखते थे और न ही पगड़ी बाँधते थे, लेकिन अकाली आंदोलन के साथ जुड़ने के बाद वे भी पगड़ी बाँधने लगे।

सुधारवादी सिखों द्वारा अकाली आंदोलन सत्याग्रह के रूप में संचालित किया गया। हजारों की संख्या में नि:शस्त्र सिख जत्थे बनाकर तथा गुरुवाणी का पाठ करते हुए गुरुद्वारों पर सामाजिक अधिकार स्थापित करने के लिए जाते थे। चूँकि सरकार का हित महंतों के साथ जुड़ा हुआ था, प्रतिवर्ष उनसे विशाल धनराशि तो प्राप्त होती ही थी, साथ-ही-साथ वे सरकार के पिट्ठू थे। अत: वह महंतों के पक्ष में खड़ी हो गई। सिखों ने सर्वप्रथम ननकाना साहब गुरुद्वारे पर सामाजिक अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया; परंतु अंग्रेज सैनिकों ने उनका मार्ग रोककर निहत्थे सिखों पर लाठियों की बौछार की, गोलियाँ चलाईं, जमीन लाशों से भर दी। इसमें लगभग दो सौ सिखों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। लेकिन सुधार चाहनेवाले सिख किसी भी कीमत पर पीछे हटने को तैयार नहीं थे।

इस घटना के विरोधस्वरूप देश के कोने-कोने से सिखों के जत्थे ननकाना साहब की ओर आने लगे। ये जत्थे जहाँ से होकर गुजरते, उनका भरपूर स्वागत किया जाता। इसी प्रकार का एक विशाल जत्था बंगा गाँव से होकर गुजरना था। जत्थे के नेतृत्वकर्ता सरदार करतारसिंह और ज्वालासिंह ने किशनसिंह से जत्थे का स्वागत करने का अनुरोध किया। लेकिन किसी कारणवश किशनसिंह को बंबई (मुंबई) जाना पड़ गया। लेकिन जाने से पूर्व जत्थे के स्वागत का कार्यभार वे भगतसिंह के कंधे पर डाल गए।

किशनसिंह के भाई दिलबाग सिंह उस क्षेत्र के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे। अंग्रेज-समर्थक होने के कारण उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि गाँव में सिखों के जत्थे का स्वागत हो। अत: उन्होंने घोषणा करवा दी कि गाँव में जत्थे की कोई सहायता नहीं की जाएगी। यदि किसी ने ऐसा किया तो वह ब्रिटिश सरकार का सबसे बड़ा दुश्मन माना जाएगा।

दिलबाग सिंह की बात घर-घर तक पहुँच गई थी, गाँववाले पीछे हटने लगे। लेकिन भगतसिंह ने भी मोरचा सँभाल लिया था। जत्थे की सहायता करने का निश्चय वे पहले ही कर चुके थे। उन्होंने एक सभा आयोजित की और गाँववालों को समझाते हुए बोले, ''भारतीय होने के कारण हमारा कर्तव्य है कि हम इस जत्थे में सम्मिलित हों। लेकिन यदि हम ऐसा नहीं कर सकते तो कम-से-कम सिर पर कफन बाँधकर निकले लोगों का उत्साह तो बढ़ा ही सकते हैं। वे जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उसमें अकेले नहीं हैं, किसी-न-किसी रूप में हम भी उनके साथ हैं— यह बताने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम दिल से जत्थे का स्वागत करें। यह आंदोलन किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं है। यह आंदोलन हम सबके लिए है; अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध है। एक

सच्चा सिख सिर कटा सकता है, लेकिन उसे झुकाना नहीं जानता। हमें गुरु गोविंद सिंह का स्मरण करते हुए अन्याय के विरुद्ध एकजुट होना चाहिए।''

भगतसिंह की वाणी ने जादू-सा असर किया। लोग अपने स्थानों से खड़े हो गए और नारे लगाते हुए भगतसिंह की बात का समर्थन करने लगे।

निर्धारित दिन जत्था गाँव में आ पहुँचा। उनके ठहरने के लिए भगतसिंह और उनके साथियों ने इतनी अच्छी व्यवस्था की थी कि जत्थे का प्रत्येक व्यक्ति उनकी प्रशंसा किए बिना न रह सका। उनकी देखा-देखी गाँववाले भी गुपचुप तरीके से जत्थे की हरसंभव सहायता कर रहे थे। जत्थे के लिए वे प्रतिदिन रात को ही भोजन और फल आदि भगतसिंह के घर पहुँचा जाते थे। इतने स्वागत की उम्मीद जत्थे ने भी नहीं की थी। दो दिन के बाद वे भगतसिंह का गुणगान करते हुए विदा हुए। इस प्रकार भगतसिंह के कारण गाँव की प्रतिष्ठा बढ़ गई।

## दिल्ली पलायन

एक ओर जत्थे को गाँव में प्रवेश करने से रोकने के दिलबाग सिंह के सारे प्रयास विफल हो गए थे, वहीं दूसरी ओर उनकी प्रतिष्ठा को भी गहरा धक्का लगा था। इसका एकमात्र कारण भगतसिंह थे। उन्होंने भगतसिंह को गिरफ्तार करवाकर उन्हें सबक सिखाने का निश्चय कर लिया। आनन-फानन में वारंट जारी किए और पुलिस के सिपाही भगतसिंह को पकड़ने के लिए घर जा पहुँचे। लेकिन भगतसिंह को इसकी भनक लग चुकी थी, इसलिए वारंट निकलने से पहले ही वे वहाँ से निकलकर दिल्ली के लिए रवाना हो चुके थे।

'दैनिक अर्जुन' दिल्ली का प्रतिष्ठित समाचार-पत्र था। इसकी स्थापना पंडित इंद्र विद्यावाचस्पति ने की थी। भगतसिंह के पास जयचंद्रजी की सिफारिश थी, इसलिए दिल्ली पहुँचते ही उन्हें 'अर्जुन' में नौकरी मिल गई। वे वहाँ बिना वेतन के काम करने लगे और वह भी पूरी निष्ठा एवं समर्पण के साथ। प्रूफ रीडिंग से लेकर संपादन तक का कार्य भगतसिंह स्वयं ही देखते थे, लेकिन यहाँ भी उन्होंने अपना नाम 'बलवंत सिंह' बताया था। उनकी निष्ठा, तत्परता और कुशलता ने शीघ्र ही उन्हें पंडित इंद्र विद्यावाचस्पति का विश्वासपात्र बना दिया। □

अध्याय 10

# आत्माहुति का प्रण

सावन का महीना चल रहा था; बादल उमड़-घुमड़कर भयंकर गर्जन करते हुए संगीतमय थाप दे रहे थे; बारिश की रिमझिम बूँदों से भीगी हुई प्रकृति नव-शृंगार की तैयारी में थी। चारों ओर प्रेम और आनंद का वातावरण था। लेकिन इस बार कानपुर के लिए यह सावन अभिशप्त बनकर आया था। गंगा की लहरें अपनी सीमाएँ तोड़कर शहर में घुस गई थीं। सरकार ने इस क्षेत्र को बाढ़-प्रभावित क्षेत्र घोषित कर दिया।

प्रथम बार घर छोड़ने के बाद कानपुर ने भगतसिंह को अपने आँचल में स्थान दिया था। यहीं 'बलवंत' नाम से उनका पुनर्जन्म हुआ था। कानपुर उन्हें अपने घर जैसा और वहाँ के निवासी भाई-बंधुओं जैसे लगते थे, इसलिए दिल्ली में कार्यरत भगतसिंह को जब कानपुर में बाढ़ आने की सूचना मिली तो वे वहाँ जाने के लिए व्याकुल हो उठे। उन्होंने तत्क्षण नौकरी से त्यागपत्र दिया और गाड़ी पकड़कर कानपुर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने बाढ़-पीड़ितों की भरपूर सेवा की; मित्रों के साथ मिलकर उन्हें बचाने और बसाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस बार भी गणेशशंकर विद्यार्थी का घर भगतसिंह का आश्रय-स्थल बना।

## दो धाराओं का संगम

भगतसिंह ने जब सुना तो उन्हें अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ। लेकिन यह भी सच था कि विद्यार्थीजी परिहास नहीं कर रहे थे। 'तो क्या वे इस समय कानपुर में हैं? क्या मैं इतना सौभाग्यशाली हूँ कि उनके दर्शन कर सकूँ? क्या उनसे मिलने का मेरा स्वप्न पूरा हो सकता है?' रह-रहकर यही विचार भगतसिंह के मस्तिष्क में उठ रहे थे। उन्होंने पुन: विद्यार्थीजी से पूछा, ''आप मुझे उनसे मिलवाने ले जाएँगे? क्या वे मुझ जैसे एक साधारण व्यक्ति से मिलना पसंद करेंगे?''

''भगतसिंह, तुम साधारण होकर भी असाधारण हो। उन्होंने स्वयं तुमसे मिलने की इच्छा व्यक्त की है। तुम तैयार रहना, हम कल सुबह ही वहाँ चलेंगे।'' विद्यार्थीजी ने कहा।

भगतसिंह बड़ी बेसब्री से सुबह होने की प्रतीक्षा करने लगे।

अगली सुबह–

दो व्यक्ति तेज कदमों से चलते हुए एक छोटी सी गली में घुस गए। थोड़ी दूर जाने के बाद एक टूटे-फूटे घर के आगे वे ठिठके और नजरें घुमाकर इधर-उधर देखने लगे। उनका पीछा नहीं किया जा रहा, इसकी अच्छी तरह से तसल्ली करने के बाद उन्होंने एक-दूसरे को देखा और शीघ्रता से घर में घुस गए। अंदर घुसते ही लकड़ियों की एक जर्जर सीढ़ी दिखाई दी। उससे होते हुए वे ऊपर के कमरे में पहुँचे।

कमरे के बीचोबीच रखी मेज पर एक मोमबत्ती जल रही थी, जिसकी लपलपाती लौ कमरे के अँधेरे को दूर करने की भरसक कोशिश कर रही थी। पास ही कुरसी पर बैठा हुआ एक युवक कागज पर कुछ लिख रहा था। आगंतुक शीघ्रता से कक्ष में प्रविष्ट हुए और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया।

आहट सुनकर युवक ने दरवाजे की ओर देखा। आगंतुकों को पहचानकर वह उठा और आगे बढ़ते हुए बोला, ''आइए विद्यार्थीजी, आपका यहाँ स्वागत है।''

लेकिन तभी वह उनके साथ लंबे, छरहरे, गौर वर्णवाले एक तेजस्वी परंतु अनजान युवक को देखकर ठिठक गया। युवक के सिर पर ढीली-सी पगड़ी बँधी हुई थी तथा वह कोट और लुंगी पहने हुए था। उसका आकर्षक व्यक्तित्व विलक्षण था।

विद्यार्थीजी युवक का परिचय देते हुए बोले, ''पंडितजी, ये ही सरदार किशनसिंह के सुपुत्र भगतसिंह हैं।''

''भगतसिंह!'' युवक के होंठों पर मुसकान थिरक गई।

अब भगतसिंह को युवक का परिचय देने की बारी थी। विद्यार्थीजी हँसते हुए बोले, ''भगतसिंह, इतने दिनों से तुम जिस महान् आत्मा के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे, ये वही हैं। महान् क्रांतिकारी पं. चंद्रशेखर आजाद!''

''पं. चंद्रशेखर आजाद।'' भगतसिंह एकटक उन्हें निहार रहे थे।

सहसा दोनों आगे बढ़े और एक-दूसरे को आलिंगनबद्ध कर लिया। ऐसा

लग रहा था मानो वर्षों बाद राम और भरत का मिलाप हुआ हो। अलग-अलग दिशाओं में बहती क्रांति की दो धाराएँ कानपुर में आकर एक-दूसरे में समाहित हो गई हों।

''विद्यार्थीजी, अगर आप नहीं बताते तो भी भगतसिंह को मैं पहचान लेता। इतना तेजस्वी केवल भगतसिंह ही हो सकता है।'' चंद्रशेखर आजाद ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा।

भगतसिंह भी कहाँ पीछे रहने वाले थे। वे आनंद में भरकर बोले, ''आजाद भाई, मैं भी बिना परिचय के आपको पहचान गया था। इतने रोबीले, तेजोमय तथा भव्य व्यक्तित्व के स्वामी केवल आप ही हो सकते हैं।''

और फिर बहुत देर तक दोनों विभिन्न विषयों पर वार्त्तालाप करते रहे।

## नौजवान भारत सभा

कुछ दिन कानपुर में रहने के बाद भगतसिंह लाहौर लौट आए। चंद्रशेखर आजाद से मिलने के बाद उनके हौसले बुलंद हो चुके थे; इरादों में दृढ़ता बढ़ गई थी। उन्होंने लाहौर के क्रांतिकारी विचारधाराओंवाले युवकों को एकत्रित करना आरंभ किया। शीघ्र ही सुखदेव, धन्वंतरी, एहसान इलाही, यशपाल, पिंडीदास आदि युवक उनके साथ जुड़ गए।

इसी बीच भगतसिंह की भेंट भगवतीचरण वोहरा से हुई। उन्होंने भी नेशनल कॉलेज में शिक्षा पूर्ण की थी, इसलिए दोनों एक-दूसरे को जानते थे। भगवतीचरण का जन्म लाहौर में हुआ था, परंतु मूलतः वे गुजराती ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज गुजरात से विस्थापित होकर लाहौर आए थे। भगवतीचरण के पिता शिवचरण वोहरा रेल विभाग में थे। उनकी कर्तव्यनिष्ठता और दक्षता से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'राय साहब' की उपाधि से सम्मानित किया था। लेकिन इसके विपरीत भगवतीचरण एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी बने। उनका विवाह 'दुर्गा' नामक एक अशिक्षित और साधारण महिला से हुआ था। लेकिन पति के सान्निध्य में उनका कायाकल्प हो गया। उन्होंने परिश्रम कर प्रभाकर तक की परीक्षा पास की और एक स्कूल में अध्यापिका बन गईं। आनेवाले वर्षों में वे क्रांतिकारिणी दुर्गा भाभी के रूप में प्रसिद्ध हुईं।

क्रांतिकारियों के मार्गदर्शन हेतु तथा उन्हें एक सूत्र में पिरोने के लिए वर्ष 1926 में भगतसिंह और भगवतीचरण ने मिलकर 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की। इससे क्रांतिकारी आंदोलन को एक विस्तृत मंच मिला, जिसका

उद्देश्य विभिन्न माध्यमों से जनता द्वारा संपर्क साधना और उन्हें क्रांतिकारी आंदोलन के उद्देश्यों एवं विचारों से अवगत करवाना था।

भगतसिंह ने रूस के महान् दार्शनिक और विचारक लेनिन का गहन अध्ययन किया था। उनके नेतृत्व में हुई क्रांति के विषय में जानकर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि क्रांति का मुख्य लक्ष्य श्रमजीवी समुदाय का कल्याण होना चाहिए। इनमें वे लोग भी सम्मिलित होने चाहिए, जो अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं। इसी अवधारणा को लेकर नौजवान भारत सभा का गठन किया गया था। यही कारण था कि सभा द्वारा जो उद्देश्य निर्धारित किए गए, वे जन-साधारण में अत्यंत लोकप्रिय हुए। ये उद्देश्य निम्नलिखित थे–

- किसानों एवं श्रमिकों को संगठित करना और उनका एक पूर्ण गणराज्य स्थापित करना।
- धर्म या जाति की अपेक्षा राष्ट्रीयता के आधार पर नौजवानों में देशभक्ति की भावना का संचार करना।
- सांप्रदायिकता-विरोधी तथा किसान-श्रमिकों के आदर्श गणतांत्रिक राज्य की प्राप्ति में सहायक होनेवाले आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक क्षेत्रों के आंदोलनों के साथ सहानुभूति रखते हुए उनकी सहायता करना।

सर्वसम्मति से रामकिशन को सभा का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। भगतसिंह इसके महामंत्री तथा भगवतीचरण प्रचार मंत्री थे। इसके अतिरिक्त लाहौर में सक्रिय अनेक क्रांतिकारी भी इसके सदस्य बन गए थे।

## प्रथम सभा

नौजवान भारत सभा की प्रथम बैठक लाहौर के 'ब्रेडला हॉल' में आयोजित की गई थी। सुबह से ही लोगों का निरंतर आगमन हो रहा था। सभा आरंभ होने तक पूरा हॉल खचाखच भर गया था। जिन्हें अंदर स्थान नहीं मिला था, वे उसके दरवाजे के पास भीड़ लगाकर खड़े हो गए थे।

मंच के बीचोबीच एक भव्य मूर्ति रखी हुई थी, जिसे सफेद कपड़े से ढका गया था। नीचे लाल-लाल अक्षरों में लिखा था–

''हिंदवासियो! रखणा याद सानूँ,
किते दिलाँ तो ना भुला जाणा।''

प्रतिमा किसकी हो सकती है, खुसर-पुसर करते हुए लोग एक-दूसरे को अपने-अपने विचार बता रहे थे।

दीवार घड़ी ने सात बजने की सूचना दी, तब पास खड़ी महिला से भगतसिंह ने कहा, ''भाभीजी, अब हमें कार्यक्रम प्रारंभ करना चाहिए।''

महिला ने सिर हिलाकर सम्मति दी और आगे बढ़ीं। थाली में रखी अगरबत्तियाँ तथा धूप प्रतिमा के सामने रखकर प्रज्वलित की।

उस श्यामल वर्ण की बड़ी-बड़ी आँखोंवाली तेजस्विनी को देखकर किसी ने कहा, ''अरे, ये तो हमारे भगवतीचरण की पत्नी दुर्गा भाभीजी हैं।''

मूर्ति के ऊपर से कपड़ा हटाते ही क्रांतिकारी करतारसिंह सराबा का चेहरा दिखने लगा। उन पर सुगंधित फूलों की माला सुशोभित थी। दुर्गा भाभी ने अपने रक्त से चित्र का अभिषेक किया। समूचा सभागार 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे से गूँज उठा। भगतसिंह ने आगे बढ़कर गुलाब-पुष्प की माला मूर्ति के गले में पहना दी और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। श्रद्धा और प्रेम की अधिकता से उनके नेत्र आँसुओं से भर आए।

तदनंतर उन्होंने बहुत मार्मिक एवं कारुणिक भाषण दिया—

''भाइयो और बहनो!

ये ही वे वीर पुरुष हैं, जिन्होंने हँसते-हँसते मौत को गले लगाया; देश की मुक्ति के लिए अपना जीवन दाँव पर लगा दिया; अपना बलिदान दिया। आज इनकी बरसी है। इसलिए इस पावन घड़ी में इस शहीद को साक्षी मानकर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि इनका अधूरा कार्य पूरा करने के लिए इन्हीं के समान हम अपने सर्वस्व की आहुति देंगे, अपना जीवन होम कर देंगे।''

भाषण के उपरांत भगतसिंह ने करतारसिंह सराबा के गीत की दो पंक्तियों को गुनगुनाया—

''चलो चलिए देश नु युद्ध करण
रखो आखिरी वचन ते फरमान हो गए...''

पूरी सभा गद्गद होकर नतमस्तक हो गई।

□

अध्याय 11

# काकोरी कांड

सरकार के अन्याय, अत्याचारों और दमनकारी नीतियों का प्रत्युत्तर देने के लिए लाहौर में क्रांतिकारियों का एक गुप्त दल भी सक्रिय था। इस दल में चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह, राजेंद्र नाथ लाहिड़ी, अशफाक उल्ला खाँ, जोगेश चंद्र, बटुकेश्वर दत्त जैसे महान् क्रांतिकारी सम्मिलित थे। इनका उद्‌देश्य बंदूक, बम आदि हथियारों का प्रयोग करके ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकना था। इसके लिए वे अपने समर्थकों से सहायता भी प्राप्त करते थे।

एक बार इन क्रांतिकारियों ने बड़े पैमाने पर ब्रिटिश सरकार पर हमला करने की योजना बनाई। लेकिन इस योजना को कारगर बनाने के लिए अतुल्य धन की आवश्यकता थी। किसी ने डकैती डालने की बात कही। बात सबको पसंद आई; लेकिन जनसाधारण को लूटने से उनके मन में क्रांतिकारियों के लिए सहानुभूति नष्ट हो जाने का डर था। तभी रामप्रसाद बिस्मिल बोले, ''मुझे पता चला है कि सहारनपुर से लखनऊ जानेवाली 8 नंबर की डाउन ट्रेन में सरकारी खजाना जाने वाला है। हमें उसे लूट लेना चाहिए। इससे हमारी योजना के मार्ग की सारी बाधाएँ दूर हो जाएँगी।''

सुझाव सराहनीय था। दल ने 9 अगस्त का दिन तथा लखनऊ से आठ मील के फासले पर स्थित 'काकोरी' नामक स्टेशन निश्चित किया। निर्धारित दिन अशफाक उल्ला खाँ, शचींद्रनाथ बख्शी और राजेंद्रनाथ लाहिड़ी ट्रेन के दूसरे दर्जे के डिब्बे में चढ़े। चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, केशव चक्रवर्ती, मुरारीलाल, मुकुंदीलाल, मन्मथनाथ गुप्त, बनवारीलाल– ये लोग तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठे। उन्होंने अपनी-अपनी पिस्तौलें कपड़ों के अंदर छिपा रखी थीं।

रात का समय था। गाड़ी धीरे-धीरे अपने गंतव्य की ओर बढ़ रही थी। बाहर का अँधेरा और भी गहराता जा रहा था। सहसा ट्रेन रुक गई। तीसरे दर्जे

में बैठे हुए क्रांतिकारी समझ गए कि दूसरे दर्जे में बैठे उनके साथियों ने ही जंजीर खींचकर गाड़ी रोकी है। सभी अपने-अपने निर्धारित कार्य में जुट गए।

ड्राइवर, गार्ड तथा तिजोरी के साथ जानेवाले सैनिकों पर पिस्तौलें तान दी गईं और वे बिना विरोध किए चुपचाप नीचे लेट गए। पूछे जाने पर इशारे से ही उन्होंने तिजोरी दिखा दी। वह बहुत बड़ी और भारी थी। पंडितजी का संकेत पाते ही छेनी और हथौड़े से तिजोरी को तोड़ दिया गया। इस डकैती से क्रांतिकारियों को 8,600 रुपए मिले। धन उनकी उम्मीदों से ज्यादा था, लेकिन इसके लिए उन्हें इससे भी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

अगले दिन सरकारी खजाना लूटे जाने की खबर चारों ओर फैल गई। 'काकोरी कांड' ने सरकार को हिलाकर रख दिया। आदेश पारित हुए और क्रांतिकारियों की धर-पकड़ आरंभ हो गई। इस दौरान पुलिस के हाथ एक 'कच्चा क्रांतिकारी' लग गया, जिसने सरकारी गवाह बनकर सारी बात उगल दी। इस गद्दारी ने पुलिस की नजरों में क्रांतिकारियों के चेहरे स्पष्ट कर दिए थे। दो दिन के अंदर-अंदर बताए गए स्थानों पर छापे मारे गए और अनेक क्रांतिकारियों को पकड़ लिया गया। इनमें रामप्रसाद बिस्मिल भी थे।

लखनऊ की अदालत में लगभग डेढ़ वर्ष तक मुकदमा चलता रहा। अभियुक्त मुकदमे का परिणाम जानते थे, फिर भी उनके चेहरों पर कोई शिकन नहीं थी। वे हँसते-मुसकराते अदालत में आते और कोई-न-कोई देशभक्ति का गीत गुनगुनाते हुए जेल लौट जाते।

मुकदमा पूर्ण होने के बाद काकोरी षड्यंत्र के अंतर्गत रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और अशफाक उल्ला खाँ को फाँसी की सजा दी गई। अदालत के इस कठोर निर्णय ने जनमानस को व्यथित कर दिया। देश के लिए लड़नेवाले ये युवक छोटी उम्र में ही मौत को गले लगाने के लिए जेल भेज दिए गए।

सजा मिलने में अभी कुछ दिन शेष थे। इसलिए चंद्रशेखर आजाद ने भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त, सुखदेव, राजगुरु तथा शिव वर्मा के साथ मिलकर बंदी क्रांतिकारियों को जेल से छुड़ाने के अनेक प्रयास किए गए; लेकिन असफलता हाथ लगी। अंतत: चारों वीर हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गए।

भगतसिंह ने असफलताओं से घबराकर हार मानना नहीं सीखा था, बल्कि असफलताओं को झेलकर उनके इरादे और भी मजबूत हो जाते थे। यही कारण था कि उन्होंने बार-बार संगठन को खड़ा किया, विभिन्न योजनाएँ बनाईं और

उन्हें कार्यान्वित किया। उनकी इस दृढ़ता को उनके साथी भी स्वीकारते थे।

## दशहरा कांड

दशहरा आ गया था। बाजार रंग-बिरंगे कपड़ों एवं मिठाइयों से सजे हुए थे। हिंदुओं के इस पर्व को पूरा लाहौर एक साथ मिलकर मनाता था। इस दिन लाहौर में प्रतिवर्ष एक मेला लगता था, जिसमें विभिन्न धर्मों के लोग सम्मिलित होकर पर्व का आनंद उठाते थे।

वर्ष 1927 में भी दशहरे के दिन यह मेला आयोजित किया गया। लोग अपने परिवार के साथ मेले में घूमने आए हुए थे। चारों ओर धार्मिक वातावरण व्याप्त था। सहसा एक भयंकर विस्फोट हुआ; हवा में मांस के लोथड़े और खून के फव्वारे उड़ गए। किसी ने मेले में बम फेंका था। देखते-ही-देखते भगदड़ मच गई। लोग जान बचाकर इधर-उधर दौड़ने लगे। इस दुर्घटना में अनेक लोग मारे गए, जबकि कई लोग बुरी तरह से घायल हुए। सरकार ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए अफवाह उड़ा दी कि यह कार्य क्रांतिकारियों का है। काकोरी कांड के बाद मेले में लूटपाट करने के लिए ही उन्होंने बम फेंका था।

लेकिन इसके पीछे एक गहरा षड्यंत्र रचा गया था। इसकी शुरुआत उसी दिन हो गई थी, जब भगतसिंह ने काकोरी कांड के अभियुक्तों को छुड़वाने का प्रयास किया था। भगतसिंह आरंभ से ही सरकार की आँखों की किरकरी बने हुए थे। सरकार को विश्वास था कि भगतसिंह काकोरी कांड के बारे में बहुत कुछ जानते हैं और उनके द्वारा कई बड़े क्रांतिकारियों तक पहुँचा जा सकता है। लेकिन लाख चाहते हुए भी उन्हें पकड़ने का मौका नहीं मिल रहा था। इसलिए अंग्रेज अधिकारियों ने एक चाल चली। उन्होंने ही दशहरे के मेले में पुलिस के एक आदमी द्वारा बम फिंकवाया था। ऐसा करके सरकार ने एक पंथ दो काज वाली कहावत को चरितार्थ किया। एक ओर लोगों के बीच क्रांतिकारियों के प्रति नफरत और घृणा फैलाकर वह उनका जनाधार कम करने लगी; वहीं दूसरी ओर संदिग्ध क्रांतिकारियों को पकड़ने का उन्हें सुनहरा अवसर मिल गया।

खार खाए बैठी सरकार ने उसी दिन भगतसिंह के नाम का वारंट जारी कर दिया।

## गिरफ्तारी

कानपुर में क्रांतिकारियों को छुड़ाने में असफलता मिलने के बाद

भगतसिंह अपने साथियों के साथ लाहौर वापस जा रहे थे। गाड़ी में बैठने पर भी उनकी आँखों के सामने क्रांति का उज्ज्वल भविष्य दिखाई दे रहा था। तभी उन्हें याद आया कि उन्हें अमृतसर में किसी से मिलना है। इसलिए उन्होंने वहीं उतरने का निश्चय किया।

गाड़ी स्टेशन पर रुकी। भगतसिंह ने उतरकर स्वभाव के अनुसार इधर-उधर देखा। लेकिन दूर-दूर तक पुलिस का कोई भी सिपाही नजर नहीं आया। वे थोड़ा मुसकराते हुए धीरे से बुदबुदाए, ''आज तो पुलिसवालों ने बड़ी मेहरबानी की है। लगता है, मुझ पर नजर रखना छोड़ दिया है।''

स्टेशन से बाहर निकलते ही उन्हें पुलिस का एक आदमी अपनी ओर आता दिखाई दिया। मन में संशय हुआ, फिर तेज कदमों से विपरीत दिशा की ओर चल दिए। सिपाही ने भी अपनी चाल तेज कर दी। भगतसिंह का हाथ जेब में रखे रिवॉल्वर पर चला गया। लेकिन फिर उसे चकमा देने के लिए वे गलियों में घुस गए। पुलिसवाला पहले से ही सतर्क था, वह निरंतर उनका पीछा करता रहा।

जब किसी तरह काम नहीं बना तो पुलिसवाले की निगाह बचाकर भगतसिंह एक मकान में घुस गए। वह मकान एडवोकेट सरदार शार्दूलसिंह का था। यद्यपि वे सरकारी वकील थे, तथापि मन से वे क्रांतिकारियों और उनके कार्यों के प्रशंसक थे। उन्होंने भगतसिंह को एक कमरे में छिपा दिया और बातों में उलझाकर पुलिसवाले को अन्यत्र भेज दिया। तदनंतर उन्होंने भगतसिंह की बहुत आवभगत की। खतरा टल जाने के बाद भगतसिंह उठे और आभार प्रकट करते हुए वहाँ से चले गए।

लेकिन खतरा टला नहीं था, वह निरंतर उनके सिर पर मँडरा रहा था। जैसे ही वे ताँगे पर बैठकर गंतव्य स्थान की ओर चलने लगे, सिपाहियों ने उन्हें घेर लिया। उन्होंने पिस्तौल टटोली, लेकिन उसे वे शार्दूलसिंह के कमरे में ही भूल आए थे। अब पकड़े जाने के अतिरिक्त कोई और चारा नहीं था।

## जमानत

बिना मुकदमा चलाए भगतसिंह को 15 दिन तक लाहौर जेल में रखा गया। इस दौरान काकोरी कांड तथा कई महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए कड़ी यंत्रणाएँ दी गईं। भगतसिंह की सुंदर देह डंडों की मार से नीली पड़ गई, शरीर में जगह-जगह गहरे घाव हो गए। लेकिन उन्होंने

जो चुप्पी साधी, उसे तोड़ने में पुलिस का हर हथकंडा विफल हो गया। थक-हारकर उन्हें लाहौर की बोर्स्टल जेल भेज दिया गया।

पुलिस ने भगतसिंह को काकोरी कांड का अभियुक्त बनाया था। लेकिन लाख प्रयत्न करने के बाद भी वह उनसे कोई बात उगलवा नहीं सकी। मुकदमा कमजोर पड़ गया था, अतः जज ने उन्हें 60 हजार रुपए की जमानत पर छोड़ने का आदेश दे दिया।

उन दिनों यह राशि बहुत बड़ी मानी जाती थी। किशनसिंह के लिए इतना रुपया इकट्ठा करना असंभव था। सरकार-विरोधी क्रांतिकारी के लिए भला कौन इतनी राशि देना स्वीकार करता! इसलिए किसी से सहायता की उम्मीद करना भी व्यर्थ था। अंततः किशनसिंह के मित्र बैरिस्टर दुनीचंद तथा दौलतराम ने 30-30 हजार रुपए जमानत के रूप में जमा करवा दिए। सिंह पुनः जेल से बाहर आ चुका था।

## डेयरी में काम

भगतसिंह जमानत पर रिहा हुए थे, इसलिए ऐसा कोई काम नहीं कर सकते थे जिससे उनकी जमानत देनेवालों पर कोई आँच आए। इसलिए उन्होंने कुछ दिन शांत बैठने का निर्णय लिया। इसी बीच सरदार किशनसिंह ने खासरियाँ में उन्हें एक डेयरी खुलवा दी। भगतसिंह पूरी निष्ठा के साथ डेयरी सँभालने लगे। उन्होंने पिता के साथ जाकर स्वयं भैंसें खरीदीं तथा डेयरी से संबंधित अन्य प्रबंधों में भी दिलचस्पी ली।

डेयरी में काम करना शुरू किया तो भगतसिंह की दिनचर्या में भी परिवर्तन आ गया। वे सुबह चार बजे उठकर भैंसों का दूध निकालते, फिर ताँगे में दूध के बड़े-बड़े बरतन रखकर लाहौर ले जाते। वहाँ ग्राहकों को दूध बेचकर रुपए-पैसे लेते और वापसी में जरूरत की वस्तुएँ लेते हुए घर लौट आते। वे इस कार्य को एक योग्य व्यापारी की तरह संपन्न करते थे। धीरे-धीरे डेयरी पर क्रांतिकारियों का जमावड़ा होने लगा। अकसर रात के अंधकार में उस सुनसान जगह पर क्रांतिकारियों की भीड़ लगी रहती। उनकी आवभगत के लिए भगतसिंह एक स्टोव और बड़ा सा बरतन भी ले आए थे। गरम-गरम दूध की चुस्कियाँ लेते हुए भविष्य की योजनाओं पर विचार-विमर्श होता।

यद्यपि डेयरी का कार्य भगतसिंह पूरी लगन से करते थे, लेकिन जीवन भर इससे बँधे रहना उन्हें मंजूर नहीं था। वे फिर से खुले आकाश में उड़ना चाहते

थे; देश के लिए खुलकर काम करना चाहते थे। परंतु जब तक जमानत की बेड़ी उन्हें जकड़े हुए थी, तब तक मन के अनुसार चलना उनके लिए असंभव था। इसलिए किसी-न-किसी तरह उन पर चल रहे मुकदमे को समाप्त होना जरूरी था। इस संदर्भ में उन्होंने डॉ. गोपीचंद भार्गव से भेंट की। गोपीचंद ने पंजाब असेंबली में प्रश्न उठाया कि 'यदि भगतसिंह के विरुद्ध सबूत हैं तो सरकार उन पर मुकदमा क्यों नहीं चलाती और अगर सबूत नहीं हैं तो बिना किसी अपराध के उन्हें जमानत पर रखने का क्या औचित्य है?'

उनके इस प्रश्न ने सरकार को उलझाकर रख दिया। अंतत: जिस पंछी को उन्होंने इतने प्रयत्नों के बाद पकड़ा था, उसे स्वयं अपने हाथों से छोड़ना पड़ा। भगतसिंह की जमानत वापस कर दी गई। अब वे मुक्त थे; मुक्त थे उन्मुक्त होकर खुले आकाश में फिर से उड़ान भरने के लिए।

## हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ

पूर्व में घटित हुई घटनाओं के कारण क्रांतिकारी एक-दूसरे से अलग-थलग पड़ गए, जिसके फलस्वरूप 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' टूटने की कगार पर पहुँच गया। लेकिन भगतसिंह इसे किसी कीमत पर खोना नहीं चाहते थे। वस्तुत: यही एक केंद्र बिंदु था, जो देश भर के क्रांतिकारियों को परस्पर जोड़ने का काम कर रहा था। इसे पुन: संगठित करने के उद्देश्य से 8 सितंबर, 1928 को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला के खंडहरों में इसकी अखिल भारतीय बैठक आयोजित की गई। देश भर से अनेक क्रांतिकारी इस सभा में सम्मिलित होने के लिए आए थे। इनमें भगतसिंह, सुखदेव, कुंदनलाल, शिव वर्मा, ब्रह्मदत्त मिश्र, जयदेव गुप्त, विजयकुमार सिन्हा, सुरेंद्र पांडेय, फणींद्रनाथ घोष, मनमोहन बनर्जी जैसे क्रांतिवीर प्रमुख थे।

यद्यपि बंगाल के प्रतिनिधियों को भी बैठक में आमंत्रित किया गया था, परंतु उन्होंने वहाँ आने के लिए दो शर्तें रखीं। पहली शर्त के अनुसार वे केवल दल को बढ़ाने तथा हथियार एकत्रित करने के पक्ष में थे। सरकार को सतर्क करनेवाली किसी भी तरह की कार्रवाई को उन्होंने नकार दिया था। दूसरी शर्त के अनुसार वे चाहते थे कि सभी प्रांतों के क्रांतिकारी बंगाल के क्रांतिकारियों के नेतृत्व में अपनी योजनाओं को संपन्न करेंगे।

भगतसिंह ने इन शर्तों को अस्वीकार कर दिया।

बैठक आरंभ हुई। भगतसिंह आगे बढ़े और उपस्थित लोगों को संबोधित

करते हुए बोले, ''भाइयो, मेरे देशप्रेमियो! यहाँ आप सबकी उपस्थिति में मुझे असीम खुशी हुई है। हम सब अगर अपनी पूरी शक्ति, पूरे सामर्थ्य से कार्य करें तो हमारे लिए कुछ भी असंभव नहीं है। हमारे दिल में देशभक्ति है, भुजाओं में असीम पराक्रम है और संपूर्ण जीवन को हँसते-हँसते क्रांति की धधकती ज्वालाओं में झोंक देने का साहस हमारे मजबूत दिलों में है। इतना सबकुछ होते हुए भी हमें मनचाही सफलता नहीं मिली, क्योंकि हम अकेले लड़ते रहे। मेरे विचार में, सभी प्रांतीय संगठनों को एक साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। सबका एक ही संगठन, एक ही उद्देश्य, एक ही कार्य-प्रणाली और एक ही लक्ष्य होना चाहिए। ऐसे संगठन के निर्माण हेतु ही हम यहाँ एकत्रित हुए हैं। मैं इस संगठन का नाम 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ' घोषित करता हूँ।''

सभी ने तालियाँ बजाकर भगतसिंह के इस प्रस्ताव का स्वागत किया।

इस प्रकार 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' का नाम बदलकर 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ' कर दिया गया। इसी परिवर्तन से स्पष्ट होता है कि उन दिनों क्रांतिकारी समाजवाद से कितने अधिक प्रभावित थे। वे अपना सर्वस्व किसानों, श्रमिकों एवं गरीब जनता के लिए न्योछावर करने के लिए सहर्ष तैयार थे।

बैठक में एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया, जिसके अंतर्गत एक संघपति चुनने की पद्धति चलाई गई। यद्यपि चोटिल होने के कारण चंद्रशेखर आजाद बैठक में उपस्थित नहीं हुए थे, तथापि उनकी योग्यता से प्रभावित होकर उपस्थित सभाजन ने सर्वसम्मति से उन्हें अपना संघपति चुन लिया। सुखदेव को पंजाब, कुंदनलाल को राजस्थान, शिव वर्मा को उत्तर प्रदेश तथा फणींद्रनाथ घोष को बिहार में संगठन का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। इनका कार्य अपने-अपने प्रांतों में क्रांति की मशाल प्रज्वलित करना, जनता में जागरूकता लाना, युवकों को दल में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करना तथा क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करना था। भगतसिंह और विजय कुमार को प्रांतों के बीच संबंध बनाए रखने का कार्यभार सौंपा गया। संगठन के पास आर्थिक स्रोतों का अभाव था, इसलिए निर्णय लिया गया कि क्रांतिकारी सरकारी खजानों और बैंकों को लूटकर आवश्यक धन एकत्रित करेंगे।

इस प्रकार भगतसिंह के नेतृत्व में अंतिम साँस लेता हुआ संगठन नवजीवन और उत्साह से परिपूर्ण होकर पुनः खड़ा हो गया।

□

अध्याय 12

# साइमन कमीशन

बढ़ते सरकारी विरोध के चलते ब्रिटिश सरकार ने पहले सन् 1919 में लॉर्ड मांटेग्यू और लॉर्ड चेम्सफोर्ड के नेतृत्व में एक समिति बनाई, जिसने हिंदुस्तानी प्रजा के हितार्थ शासन में कुछ सुधार सुझाए, लेकिन वे छलावा मात्र सिद्ध हुए। इसके बाद जब देश में उथल-पुथल ज्यादा बढ़ गई; क्रांतिकारियों का प्रभाव और संगठन बढ़ने लगा, तब सरकार ने 8 नवंबर, 1927 को घोषणा की कि भारत की स्थिति का अध्ययन करने के लिए लॉर्ड साइमन की अध्यक्षता में सात सदस्यीय एक कमीशन भारत आ रहा है। इस कमीशन का कार्य देश के विभिन्न हिस्सों में जाकर लोगों की कठिनाइयाँ जानना और उसके बारे में सरकार से सिफारिश करना था। लेकिन आश्चर्य की बात थी कि इसमें किसी भी भारतीय को सम्मिलित नहीं किया गया था। यह भारतीय जनता का खुला परिहास था। समाचार-पत्रों ने भी इस कमीशन की भर्त्सना की। इस अवसर पर नरम और गरम दलों ने एक साथ मिलकर कमीशन के बहिष्कार का निश्चय कर लिया।

## 'साइमन कमीशन वापस जाओ'

3 फरवरी, 1928 को कमीशन बंबई पहुँचा। इसकी अध्यक्षता लॉर्ड साइमन कर रहे थे, इसलिए इसे 'साइमन कमीशन' कहा गया। कमीशन के भारत की धरती पर पैर रखते ही मानो संपूर्ण देश एकजुटता की डोर से बँध गया। उस दिन देश भर में हड़ताल घोषित की गई तथा काले झंडों एवं 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारे से कमीशन का स्वागत किया गया। इस अप्रत्याशित प्रदर्शन से गोरी सरकार बौखला गई। भारतीय जनता से उसे इस एकजुटता की अपेक्षा नहीं थी।

बंबई में अपना कार्य समाप्त कर कमीशन दिल्ली रवाना हुआ। लेकिन यहाँ भी बंबई जैसी स्थिति थी। जैसे ही कमीशन के सदस्यों ने ट्रेन से बाहर

कदम रखे, पूरा स्टेशन 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारों से गूँज उठा। चारों ओर काले झंडे और उग्र भीड़ के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। जैसे-तैसे करके कमीशन को स्टेशन से बाहर निकाला गया; परंतु बाहर स्थिति और भी विकट थी। जहाँ भी नजर जाती, काले झंडे पकड़े विशाल जनसमूह दिखाई देता। स्टेशन से कमीशन के गंतव्य स्थान तक का पूरा मार्ग काले झंडों और 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारों से पटा पड़ा था।

अब मद्रास (चेन्नई) की बारी थी। यहाँ भी प्रदर्शनकारियों ने कमीशन का भरपूर स्वागत किया। लेकिन इस बार अंग्रेज अधिकारियों के सब्र का बाँध टूट गया और उन्होंने फायरिंग कर तीन प्रदर्शनकारियों को मार दिया। सरकार अब आंदोलनकारियों को किसी भी तरह की ढील नहीं देना चाहती थी। कलकत्ता में मद्रास की घटना की पुनरावृत्ति की गई। लेकिन इस बार मुठभेड़ जबरदस्त थी, जिसमें अनेक प्रदर्शनकारी घायल हो गए।

कमीशन का पाँचवाँ पड़ाव लाहौर में था, जो उस समय क्रांतिकारियों का प्रमुख गढ़ माना जाता था। मद्रास और कलकत्ता में घटित हुई घटनाओं से यहाँ के क्रांतिकारी क्षुब्ध थे। वे सरकार को मुँह-तोड़ जवाब देना चाहते थे। इसके लिए हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ के पास कई योजनाएँ थीं। दिल्ली में केंद्रीय समिति की बैठक में भगतसिंह ने बम फेंककर असंतोष प्रदर्शित करने का प्रस्ताव रखा। लेकिन दल आर्थिक संकट से गुजर रहा था, इसलिए सर्वसम्मति होते हुए भी इस प्रस्ताव को रद्द करना पड़ा। अंत में निर्णय लिया गया कि जिस प्रकार कमीशन का विरोध हो रहा है, वे उसी तरह के प्रदर्शन में सम्मिलित होंगे।

## लाला लाजपतराय की शहादत

लाहौर में कमीशन के बहिष्कार की जिम्मेदारी 'नौजवान भारत सभा' पर थी और उसने इसके लिए कमर कस ली थी। जिस दिन कमीशन को लाहौर पहुँचना था, भगतसिंह स्वयं लाला लाजपतराय को साथ लेकर स्टेशन पहुँच गए। नौजवान भारत सभा ने लालाजी के नेतृत्व में प्रदर्शन करने का निर्णय लिया था। लालाजी की सुरक्षा के मद्देनजर क्रांतिकारियों की एक टोली ने उन्हें घेर लिया था। भगतसिंह उन्हीं के साथ खड़े हुए 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे लगा रहे थे। उनके बीच में लाला लाजपतराय सिंह की भाँति खड़े थे। आज वे एक चट्टान की तरह खड़े होकर करोड़ों भारतीयों की भावनाओं और राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

इधर स्टेशन पर बहिष्कार की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी, उधर शहर में हड़ताल घोषित कर दी गई। सड़कों के किनारे काले झंडों से भर दिए गए।

निर्धारित समय पर ट्रेन स्टेशन पर आकर रुकी। कमीशन के सदस्यों ने बाहर कदम रखे। उन्हें देखते ही भगतसिंह ने नारा लगाया, ''साइमन कमीशन वापस जाओ! अंग्रेजी सरकार, वापस जाओ !'' और फिर देखते-ही-देखते उपस्थित जनसमूह उनका साथ देना लगा। काले झंडों को लहरा-लहराकर विरोध प्रदर्शित होने लगा।

स्टेशन से बाहर निकलने के सारे मार्ग अवरुद्ध हो चुके थे। प्रदर्शनकारियों की भीड़ निरंतर बढ़ती जा रही थी। ऐसे में मोरचा तोड़ने के लिए पुलिस लाठीचार्ज करने लगी। लालाजी वाला मोरचा थोड़ा कमजोर था, इसलिए सिपाही उन्हें पीछे खदेड़ने का प्रयास करने लगे। लेकिन उनका आकलन गलत था। जिस ओर पंजाब केसरी लाला लाजपतराय, भगतसिंह, सुखदेव जैसे क्रांतिकारी खड़े हों, वह मोरचा कमजोर नहीं बल्कि सबसे मजबूत था। जब मामूली लाठीचार्ज से काम नहीं बना तो पुलिस अधिकारी स्कॉट ने मोरचे पर भीषण प्रहार करने का आदेश दिया।

आदेश मिलते ही पुलिस सुपरिंटेंडेंट एस.पी. सांडर्स अन्य सिपाहियों के साथ लाठी लेकर भीड़ पर टूट पड़ा और बेरहमी से प्रहार करने लगा। मोरचे के नेता लाला लाजपतराय थे, इसलिए उसके प्रहारों का मुख्य बिंदु वे ही थे। उसका पहला वार लालाजी की छतरी पर पड़ा। प्रहार इतना तीव्र था कि छतरी टूट गई। उसके बाद उसने कंधे पर वार किया। लालाजी लड़खड़ाकर नीचे गिरने लगे। परंतु फिर स्वयं को सँभालकर पुनः योद्धा की भाँति आ डटे और तीव्र स्वर में नारे लगाने लगे। सांडर्स का क्रोध भड़क उठा। उसने उनके माथे पर तीव्र प्रहार किया। चोट लगते ही माथे से रक्त का फव्वारा फूट पड़ा, आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। तभी उनका स्वर गूँजा, ''पुलिस की इस जालिमाना हरकत के विरोध में प्रदर्शन स्थगित कर दिया जाए।''

पुलिस की बर्बरता के विरोध में प्रदर्शन को स्थगित करना नौजवान प्रदर्शनकारियों को स्वीकार्य नहीं था। लेकिन लालाजी की बात टाली भी नहीं जा सकती थी। अतः अनिच्छापूर्वक मोरचा तोड़ दिया गया और पुलिस अधिकारी कमीशन के सदस्यों सहित वहाँ से चले गए। इस सारे घटनाक्रम के समय भगतसिंह लालाजी के साथ ही थे। लेकिन प्रदर्शन के दौरान कोई भी हिंसात्मक कार्य या प्रतिरोध नहीं किया जाएगा, इसका निर्णय पहले ही हो चुका था,

इसलिए लाख चाहते हुए भी भगतसिंह को पुलिस की बर्बरता को चुपचाप सहना पड़ा।

लाहौर में बिगड़ी स्थिति की आशंका से धारा 144 लागू कर दी गई, परंतु इस धारा को तोड़कर उसी शाम मोरी दरवाजे के पास वाले मैदान में एक विशाल सार्वजनिक सभा की गई, जिसमें हजारों लोगों ने भाग लिया। बुरी तरह से घायल होने के बाद भी लाला लाजपतराय इस सभा में उपस्थित हुए और सिंह की तरह गर्जन करते हुए बोले, ''मैं घोषणा करता हूँ कि मुझ पर पड़ी एक-एक लाठी ब्रिटिश सरकार के कफन में अंतिम कील का काम करेगी।''

यद्यपि लाठी के प्रहार लाला लाजपतराय के शरीर पर पड़े थे, लेकिन इस अपमान से उनका स्वाभिमान और अंतर्मन– दोनों बुरी तरह से चोटिल हो गए थे। शारीरिक पीड़ा से अधिक उन्हें मानसिक पीड़ा भोगनी पड़ रही थी। अंततः 17 नवंबर, 1928 को पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ने सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

रावी के तट पर इस महान् आत्मा को अंतिम विदाई दी गई। इस अवसर पर एक लाख से अधिक लोगों ने उपस्थित होकर लाला लाजपतराय को श्रद्धांजलि दी।

10 दिसंबर, 1928 को लाहौर के 'मजंग' मोहल्ले में हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ की एक बैठक हुई। इसमें चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह, महावीर सिंह, सुखदेव, राजगुरु, जयगोपाल, किशोरी लाल तथा दुर्गा देवी इत्यादि लोग सम्मिलित हुए। प्रदर्शन के दौरान लाठीचार्ज करने का आदेश पुलिस अधिकारी स्कॉट ने दिया था। इसलिए क्रांतिकारी लालाजी की मृत्यु का कारण उसे ही मानते थे। अतः बैठक में स्कॉट को मारने का निर्णय लिया गया। इस कार्य को पूर्ण करने की जिम्मेदारी चंद्रशेखर आजाद को सौंपी गई। उनके परामर्शानुसार अगले दिन से ही स्कॉट की निगरानी करते हुए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की जाने लगी।

## सांडर्स की हत्या

क्रांतिकारियों का यह दल अपने शिकार की टोह में था, लेकिन स्कॉट निश्चित स्थान पर कभी नहीं मिल सका। माल रोड की कोतवाली की तरफ से वह बाहर नहीं आया।

आखिर उसका इंतजार करते हुए तंग आकर राजगुरु ने आजाद से कहा,

"अब मुझसे रहा नहीं जा रहा। कहो तो अंदर घुसकर मैं उसका काम तमाम कर वापस आ जाता हूँ?"

पुलिस के पहरे में घुसकर स्कॉट को मारना मात्र अविचार था, दु:साहस था। इससे स्कॉट का कोई अहित नहीं होता, राजगुरु व्यर्थ में पकड़ा जाता। आजाद अपने निष्ठावान् साथियों को इस प्रकार अकारण ही क्यों बलिदान होने देते। उन्होंने उसकी विवेकशून्य योजना पर क्रोध से आँखें तरेरकर उसकी बात अस्वीकार कर दी।

इसी तरह इंतजार करते हुए चार दिन व्यर्थ हो गए। लेकिन आखिरकार पाँचवें दिन उनकी प्रतीक्षा का अंत हुआ।

भरी दोपहर थी; चिलचिलाती धूप थी। सुदूर तक फैला हुआ रास्ता धूप से जल रहा था; झुलस रहा था। सारा वातावरण रूखा और बेजान था। नीरव निस्तब्धता थी। रास्ते में सन्नाटा छाया हुआ था। लेकिन इसी प्रकार का समय उनके लिए शुभ था।

माल रोड पर पुलिस कोतवाली के ठीक सामने रास्ते में एक युवक खड़ा था। उसकी साइकिल खराब हो गई थी और वह बड़ी देर से उसकी मरम्मत कर रहा था। तभी कोतवाली से एक पुलिस अधिकारी बाहर निकला। उसने मोटर साइकिल स्टार्ट की और उस पर सवार होकर फाटक तक आ गया। वह वहाँ से बाहर निकलने ही वाला था कि संकेत किया गया।

सहसा फाटक की आड़ में खड़े युवक की रिवॉल्वर से गोली चली और निशाने को भेदती निकल गई। गोली मस्तक पर लगी और पुलिस अधिकारी मोटर साइकिल समेत नीचे गिर पड़ा।

फिर दूसरा युवक आगे बढ़ा। कहीं जीवित न हो, यह सोचकर उसने एक के बाद एक गोलियाँ दाग दीं। सिर से कंधे तक का शरीर बुरी तरह से छलनी हो गया था। लालाजी पर लाठी के क्रूरतम प्रहार करनेवाला अत्याचारी गोलियों का निशाना बन गया। घमंडी का अहंकार सदा के लिए मिट्टी में मिल गया था।

बेबस और नादान समझे जानेवालों ने अपनी सच्ची बहादुरी प्रकट कर भरी दोपहर में खूँखार समझी जानेवाली ब्रिटिश सरकार के एक मजबूत स्तंभ को कोतवाली के सामने गिरा दिया था।

पहली गोली चलाकर पुलिस अधिकारी की हत्या करनेवाला राजगुरु था, जबकि उस पर गोलियों की बौछार करनेवाले भगतसिंह थे। पास ही एक झाड़ी

के पीछे चंद्रशेखर आजाद हाथ में रिवॉल्वर लिये हुए बैठे थे।

पूर्व योजना के अनुसार वे दोनों तेजी से डी.ए.वी. कॉलेज की ओर चल दिए। लेकिन घटना को अपनी आँखों से देखनेवाला ट्रैफिक इंस्पेक्टर फर्न उनका पीछा करने लगा। उसके साथ दो सिपाही भी उसी दिशा में दौड़े। फर्न राजगुरु के बहुत पास आ गया था। जान बचाने के लिए राजगुरु ने गोली चलाई, परंतु निशाना चूक गया। राजगुरु पल भर को ठिठका और फिर फर्न पर टूट पड़ा। अपनी मजबूत देह से उसने पहलवानी का दाँव मारकर फर्न को उठाकर नीचे पटक दिया और उसके उठने से पहले भागकर बहुत दूर चला गया।

फर्न किसी भी तरह से हार माननेवाला नहीं था। वह उठा और फिर पीछा करने लगा। तभी भगतसिंह ने पीछे मुड़कर उस पर गोली चला दी। गोली पास से निकल गई; लेकिन डर के मारे फर्न वहीं लुढ़क गया। भगतसिंह दूसरी गोली दागने ही वाले थे कि आजाद की आवाज सुनाई दी, ''जल्दी भागो यहाँ से!''

तीनों भागते हुए कॉलेज के अहाते में घुस गए; परंतु चंदनसिंह नामक एक सिपाही अभी भी उनका पीछा कर रहा था।

भगतसिंह सबसे आगे भाग रहे थे और उसके पीछे राजगुरु था। उनके पीछे चंदनसिंह दौड़ रहा था। इस भागम-भाग में राजगुरु को पीछे छोड़ते हुए चंदनसिंह आगे निकल चुका था। उसका पूरा ध्यान भगतसिंह पर केंद्रित था।

चंदनसिंह बहुत लंबा और मजबूत आदमी था। जान की बाजी लगाकर वह पीछा कर रहा था। आखिरकार वह सफल होने जा रहा था। जैसे ही वह भगतसिंह को दबोचने वाला था, तेजी से एक गोली आकर उसके पैर में लगी। वह लड़खड़ाया और फिर पीछा करने लगा। दूसरी गोली चली और इस बार गोली उसके पेट में लगी। चीख मारकर वह जमीन पर गिर गया। भगतसिंह समझ चुके थे कि भागते हुए दुश्मन पर निशाना लगाकर उसे मारने का कारनामा केवल चंद्रशेखर आजाद ही कर सकते हैं।

भागते-भागते वे कॉलेज के छात्रावास से बाहर आ गए। वहाँ दो साइकिलें खड़ी हुई थीं। एक साइकिल पर भगतसिंह बैठे और दूसरी को आजाद अपने पीछे राजगुरु को बिठाकर चलाने लगे। थोड़ी देर में ही दोनों साइकिलें मजंग हाउस के अहाते में प्रवेश कर गईं। योजना कामयाब हो चुकी थी। प्रसन्नता से सबके चेहरे दमक रहे थे।

लेकिन इस सारे घटनाक्रम में एक बड़ी गलती हो गई थी। स्कॉट पर नजर रखने का काम जयगोपाल को सौंपा गया था। भूलवश वह सांडर्स को ही

स्कॉट समझ बैठा और उसी पर नजर रखे हुए था। वास्तव में जनरल स्कॉट डर के मारे कुछ दिनों के लिए लाहौर से बाहर चला गया था। जो क्रांतिकारियों की गोलियाँ का निशाना बना था, वह स्कॉट नहीं बल्कि सांडर्स था। सांडर्स ने लाला लाजपतराय पर लाठियों से वार किया था; वह भी क्रांतिकारियों की नजर में था, इसलिए उसकी हत्या से ही संतोष कर लिया गया।

शहर भर में इस अप्रत्याशित घटना ने तहलका मचा दिया। जनता खुशी के मारे उछल रही थी। उसके मन की साध पूरी हो चुकी थी। लेकिन सरकार और उसका गुप्तचर विभाग हिलकर रह गया। शर्म से उनका सिर झुक गया। दिन-दहाड़े उनकी नाक के नीचे एक ब्रिटिश पुलिस अधिकारी को मार दिया गया था, यह उनके लिए डूब मरनेवाली बात थी।

अगले दिन सूर्योदय के साथ ही जगह-जगह दीवारों पर पोस्टर लगे हुए थे। गुलाबी कागज पर लाल स्याही से लिखे पोस्टर वस्तुतः क्रांतिकारियों का स्पष्टीकरण था। उन पोस्टरों में कुछ यूँ लिखा था—

**नौकरशाही सावधान!**

जे.पी. सांडर्स की मौत से लाला लाजपतराय की हत्या का बदला ले लिया गया है। यह कितना अफसोसजनक है कि जे.पी. सांडर्स जैसे एक मामूली पुलिस अफसर के कमीने हाथों ने 30 करोड़ जनता के हृदय सम्राट् एक नेता पर हमला करके उनकी जान ले ली। राष्ट्र का यह अपमान हिंदुस्तानी मर्दों और युवकों को एक चुनौती थी।

आज संसार ने अपनी आँखों से देख लिया है कि हिंदुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गई। उसका खून जम नहीं गया है। वह अपने राष्ट्र के लिए प्राणों की बाजी लगा सकती है। यह प्रमाण देश के उन युवकों ने दिया है, जिनकी इस देश के नेता निंदा और अवमानना करते हैं।

**अत्याचारी सरकार सावधान!**

इस देश की दलित और पीड़ित जनता की भावनाओं को चोट न पहुँचाओ। अपनी शैतानी हरकतें बंद करो। हिंदुस्तानियों को हथियार न रखने दिए जाएँ, ऐसे बनाए तुम्हारे सब कानूनों और तमाम चौकसी के बाद भी इस देश की जनता के हाथ पिस्तौल और रिवॉल्वर आते रहेंगे। यदि ये हथियार सशस्त्र क्रांति के लिए काफी न हुए तो भी राष्ट्रीय अपमान का बदला लेते रहने के लिए तो काफी रहेंगे ही। हमारे अपने लोग भले ही हमारी निंदा और अपमान करें। विदेशी सरकार चाहे हमारा

कितना भी दमन कर ले, परंतु हम राष्ट्र के सम्मान की रक्षा के लिए और विदेशी आततायियों को सबक सिखाने के लिए हमेशा तैयार रहेंगे। हम सब विरोध और दमन के बावजूद क्रांति की पुकार को बुलंद रखेंगे और फाँसी के तख्तों से भी यही पुकारते रहेंगे–

**इनकलाब जिंदाबाद!**

हमारे हाथों एक व्यक्ति की हत्या हुई, इसका हमें खेद है। परंतु यह व्यक्ति उस निर्दयी, नीच और अन्यायी व्यवस्था का एक अंग था, जिसका खात्मा करना आवश्यक था। इस व्यक्ति को हिंदुस्तान में ब्रिटिश हुकूमत के एक कारिंदे के तौर पर मौत के घाट उतारा गया है। यह सरकार दुनिया की सबसे ज्यादा अत्याचारी सरकार है।

एक मनुष्य का रक्त बहाने का हमें खेद है, परंतु क्रांति के लिए रक्त बहाना जरूरी हो जाता है। हमारा मकसद ऐसी क्रांति से है, जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देगी।

**इनकलाब जिंदाबाद!**

सभी प्रसन्नता से रोमांचित हो गए। मन आशा से लहलहा उठे। जनता मन-ही-मन क्रांतिकारियों के सुयश की कामना कर रही थी। इसके विपरीत, सरकार बौखला उठी थी। नौजवान भारत सभा और स्टूडेंट्स यूनियन के कई सदस्यों को पकड़ा गया; उनके घर तलाशी ली गई। लेकिन सांडर्स की हत्या से जुड़ा कोई भी सबूत नहीं मिला। सरकार को विश्वास था कि इस हत्याकांड के पीछे भगतसिंह और उनके साथियों का हाथ है; परंतु वे पहले ही भूमिगत हो चुके थे।

## लाहौर से पलायन

सांडर्स के हत्यारों को पकड़ने के लिए सरकार ने कार्रवाई तेज कर दी थी। जगह-जगह पर छापे मारकर संदिग्ध क्रांतिकारियों को पकड़ने का प्रयास जारी था। यद्यपि भगतसिंह ने बाल और दाढ़ी कटवाकर अपना हुलिया पूरी तरह से बदल लिया था, परंतु सरकार के बढ़ते शिकंजे से बचने के लिए उन्होंने लाहौर से कलकत्ता जाने का निश्चय कर लिया। सोचना जितना सरल था, अमल में लाना उतना ही दुष्कर। उन्होंने सुखदेव के साथ मिलकर इसकी भी योजना बना डाली। लेकिन दुर्गा भाभी की सहायता के बिना इसका पूरा होना मुश्किल था। उन दिनों भगवतीचरण कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होने कलकत्ता गए

हुए था। अतः दुर्गा भाभी से बात करने और उन्हें सहमत करने की जिम्मेदारी सुखदेव ने अपने कंधों पर ले ली।

रात के आठ बजे थे। इस समय दुर्गा भाभी अपनी पड़ोसन के साथ संस्कृत पढ़ा करती थीं। इसके लिए उन्होंने एक प्राध्यापक नियुक्त कर रखा था। तभी दरवाजे से सुखदेव ने उन्हें आवाज लगाई। किताब एक ओर रखकर दुर्गा भाभी बाहर आ गईं और सुखदेव को अंदर आने के लिए कहा।

सुखदेव धीमे स्वर में बोला, ''भाभी, एक विशेष काम है। लेकिन तत्काल नहीं बताया जा सकता।''

''तो फिर थोड़ा रुक जाइए।'' यह कहकर दुर्गा भाभी अंदर चली गईं। उन्होंने कोई कारण बताकर पढ़ाई बंद कर दी। अध्यापक और पड़ोसन के चले जाने के बाद उन्होंने सुखदेव को अंदर बुलाया और काम पूछा।

''घर में पैसे पड़े हैं?'' सुखदेव ने एकदम प्रश्न किया।

''हाँ, पड़े हैं। बताओ, कितने चाहिए?''

''जितने भी हों, सारे चाहिए।''

दुर्गा भाभी ने कमर में लटका चाबियों का गुच्छा निकालकर अलमारी खोली और साड़ियों की तहों में सँभालकर रखे हुए पाँच सौ रुपए निकालकर सुखदेव को पकड़ा दिए।

हाथ में पैसे लिये सुखदेव अभी भी चिंतित दिखाई दे रहा था। सहसा उसने पूछा, ''भाभीजी, आप बाहर जा सकेंगी? इस शहर से बाहर?''

''कहाँ जाना है?'' दुर्गा भाभी ने प्रश्न किया।

''एक आदमी को लाहौर के बाहर पहुँचाना है। उसके साथ मेमसाहब बनकर जाना होगा। काम जोखिम का है। सोचकर बताइए। शायद जान पर भी बन सकती है।'' सुखदेव ने उनके चेहरे की ओर देखते हुए पूछा।

उन्होंने शांत स्वर में पूछा, ''कौन आदमी है?''

''कोई भी हो।'' सुखदेव ने बात टाली।

''जाऊँगी।'' दुर्गा भाभी ने दृढ़ स्वर में कहा।

''ठीक है। आज रात वह आदमी यहीं रहेगा।''

सहमति मिलने के बाद सुखदेव वहाँ से चला गया। लेकिन दुर्गा भाभी का मन बेचैन था। वे बड़ी अधीरता से सुखदेव की प्रतीक्षा करने लगीं।

कुछ समय बाद सुखदेव वापस आ गया। उसके साथ एक आदमी आया। उस लंबे युवक ने ओवरकोट पहन रखा था। सिर पर हैट था।

दुर्गा भाभी ने उस अजनबी पर सरसरी नजर डाली और उन्हें अंदर ले आईं।

''इनका नौकर भी आया है।''

''उसे इस तरफ के छोटे कमरे में ठहराइए।'' दुर्गा भाभी ने कहा।

उस साँवले और नाटे-से नौकर को सुखदेव ने उसका बिस्तर लेकर बताए हुए कमरे में भेज दिया। लेकिन दुर्गा भाभी सिर झुकाए बैठी हुई थीं। पराए आदमी की ओर देखने में उन्हें संकोच हो रहा था। लेकिन अतिथि शरारत से मुसकराते हुए उन्हें देख रहा था।

''भाभीजी, आपने इन्हें पहचाना? देखिए तो।'' सुखदेव ने मुसकराते हुए कहा।

अब जाकर दुर्गा भाभी ने नजरें उठाईं और अजनबी को देखा। आँखें मिलते ही उस आदमी को हँसी आ गई। उसे हँसते देखकर दुर्गा भाभी ने उसे पहचान लिया और स्वयं भी हँसते हुए बोलीं, ''अरे, ये तो भगत है। बिलकुल भी पहचान में नहीं आ रहा।''

तीनों मिलकर हँस पड़े।

''और वह नौकर कौन है?''

''रघुनाथ उर्फ राजगुरु।'' सुखदेव ने कहा।

दुर्गा भाभी के मन का बोझ दूर हो गया। किसी अनजान व्यक्ति के साथ जाने के लिए वे सहमत तो गई थीं, लेकिन फिर भी उन्हें यह काम कठिन लग रहा था। अब भगतसिंह और राजगुरु के होते हुए उन्हें किसी बात का डर नहीं था।

तभी सुखदेव बोला, ''भाभीजी, शचींद्र को भी साथ ले जाना होगा।''

सुखदेव की इस बात को सुनकर दुर्गा भाभी का ममत्व जाग उठा। अपने प्राणों को संकट में डालने के लिए वे सहर्ष तैयार थीं, लेकिन अपने एकमात्र पुत्र को मौत के मुँह में ले जाना उन्हें कठिन प्रतीत हो रहा था। परंतु फिर उन्होंने अपने ममत्व के आवेग को रोक लिया और सहमति में सिर हिला दिया।

पाँच बजे थे। भोर का उजाला फैलने लगा था। इस झुटपुट में एक रोबदार साहब अपनी मेमसाहब और बच्चे के साथ प्लेटफॉर्म पर पहुँचे। उन्होंने अपने

इकलौते तथा सुंदर बच्चे को गोद में उठा लिया। उन दोनों में कानाफूसी हो रही थी। गरदन झुकाकर अपने बेटे के साथ बातें करने के कारण साहब का चेहरा स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था।

कलकत्ता मेल स्टेशन पर खड़ी थी। प्रथम श्रेणी में आरक्षित सीटें ढूँढ़कर साहब और उनका परिवार बैठ गए, जबकि सेवक दूसरे डिब्बे में चढ़ गया।

इस दौरान अनेक बार सिपाही उनके आगे से निकले, लेकिन कोई भी साहब बने भगतसिंह को पहचान नहीं सका। दुर्गा भाभी ने भी स्वयं को इस प्रकार तैयार किया था कि वह सचमुच किसी अधिकारी की पत्नी लग रही थीं।

निर्धारित समय पर कलकत्ता मेल चल दी। लगभग चालीस घंटों की लंबी यात्रा; स्टेशन आने पर दुर्गा भाभी का दिल जोर-जोर से धड़कने लगता। कोई सिपाही उनकी ओर देख लेता तो उनके प्राण गले में अटक जाते। इसके विपरीत, भगतसिंह बिलकुल निश्चिंत थे। उन्हें अपनी सफलता पर पूरा भरोसा था। अंतत: गाड़ी अपने गंतव्य पर जा पहुँची। सबने चैन की साँस ली।

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार की आँखों में धूल झोंककर भगतसिंह सकुशल लाहौर से बच निकले।

□

अध्याय 13

# असेंबली में बम

कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन जोर-शोर के साथ संपन्न हुआ। बंगाली रीति-रिवाज के अनुसार धोती और मलमल का ढीला कुरता पहनकर तथा दुशाला लपेटकर भगतसिंह अधिवेशन के मंडप में उपस्थित थे। पं. मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे। वातावरण उत्साहवर्द्धक था। लेकिन अधिवेशन में पारित प्रस्ताव निराशाजनक था, जिसमें कहा गया था कि ''एक रात के अंदर सरकार ने यदि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट को स्वीकार कर देश को सीमित स्वराज्य नहीं दिया तो कांग्रेस फिर कभी भी संपूर्ण स्वराज्य प्राप्त किए बिना किसी भी प्रकार के समझौते को स्वीकार नहीं करेगी।''

भगतसिंह मन-ही-मन अत्यंत उद्विग्न थे। उन्होंने ऐसा कार्य करने का निश्चय कर लिया, जिससे एक ओर सरकार की नींद उड़ जाए, वहीं दूसरी ओर देशवासियों के निष्क्रिय मन में चेतना की चिनगारी जल उठे। वे एकजुट होकर ब्रिटिश साम्राज्य को देश से उखाड़ फेंकने के लिए उद्यत हो जाएँ।

देश के सम्माननीय नेतागण जिस समय सरकार के साथ समझौता करने में प्रयत्नशील थे, उसी समय लाहौर में विस्फोटक झंडे गाड़कर आया हुआ यह इक्कीस वर्षीय युवक फिर किसी अनहोनी घटना को साकार करने की सोच में मग्न था।

कलकत्ता के 'अनुशीलन समिति' नामक क्रांतिकारी संगठन के साथ संबंध स्थापित करने तथा इस बारे में उनके साथ परामर्श करने के उद्देश्य से भगतसिंह ने समिति के प्रमुख नेता प्रतुलचंद्र गांगुली से संपर्क किया। भगतसिंह ने जो योजना प्रस्तुत की, वह उन्हें बहुत पसंद आई। उन्होंने दो रिवॉल्वर देकर भगतसिंह को आशीर्वाद दिया।

लेकिन चोरी-छिपे प्राप्त होनेवाले इन रिवॉल्वरों से काम नहीं बन सकता

था। इसके लिए बड़े पैमाने पर बम बनाने की आवश्यकता थी। बम की जरूरत को पिछले कई महीनों से महसूस किया जा रहा था। लेकिन इसके लिए न तो पैसा था, न सामग्री और न ही उचित मार्गदर्शन।

इसी बीच सूचना मिली कि कलकत्ता के विख्यात क्रांतिकारी यतींद्रनाथ दास को नजरबंदी से मुक्त कर दिया गया है। भगतसिंह ने गुप्त रूप से उनसे संपर्क किया। एक ही विचारधारा से ओत-प्रोत दो युवक परस्पर मिले और एकजुट होकर कार्य करने का निश्चय किया। यतींद्रनाथ बम बनाने की कला में निपुण थे। वे हर तरह का सहयोग देने के लिए तैयार थे।

इस काम का आरंभ कलकत्ता के ही एक क्रांतिकारी के घर गन कॉटन बनाने से किया गया। तदनंतर गन कॉटन और अन्य रासायनिक सामग्री लेकर भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा, फणींद्र घोष आदि क्रांतिकारी दो टुकड़ियों में आगरा पहुँचे।

आगरा में हींग मंडी और नमक मंडी में दो घर किराए पर लेकर बम बनाने के कारखाने बनाए गए। यहीं दल की बैठकें भी होती थीं। उधर लाहौर में सुखदेव ने और सहारनपुर में शिव वर्मा ने बम बनाने के कारखाने बना लिये थे। इस तरह क्रांतिकारी पूरे जोश के साथ बम बनाने लगे।

## सरकार की कूटनीति

देश में विभिन्न स्थानों पर आंदोलन हो रहे थे, जिसमें लाखों लोग सम्मिलित होते थे। दिन-प्रतिदिन सरकार-विरोधी विचारधाराओं का निरंतर प्रसार हो रहा था। इस आंदोलन के चलते जहाँ सरकार को आम जनता के विरोध का सामना करना पड़ रहा था, वहीं दूसरी ओर सरकारी कार्यालयों एवं अंग्रेजों के घरों में कार्य करनेवाले श्रमिक देशभक्ति से प्रेरित होकर कभी भी हड़ताल कर सरकारी व्यवस्था को पंगु बना देते। इसके परिणास्वरूप सरकार की स्थिति कमजोर होती जा रही थी। अत: सरकार ने 'जन-सुरक्षा बिल' तथा 'औद्योगिक विवाद बिल' पारित करने का निर्णय लिया। जन-सुरक्षा बिल के अंतर्गत सरकार का उद्देश्य युवक आंदोलनों को कुचलना था, जबकि औद्योगिक विवाद बिल मजदूरों को हड़ताल के अधिकार से वंचित करने का उपाय था। इन बिलों द्वारा सरकार देश की जनता को बिलकुल अलग-थलग कर देना चाहती थी। लेकिन भगतसिंह जैसे जागरूक युवक सरकार की इस कूटनीति को समझ गए। बिल केंद्रीय असेंबली में प्रस्तुत किए जाने थे। उन्हें विश्वास था कि असेंबली के कांग्रेसी नेता इन बिलों को पास नहीं होने देंगे। परंतु उन्हें वायसराय की 'वीटो

पावर' का भी ज्ञान था, जिसके अंतर्गत वह अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए बिलों को पास कर सकता था।

इस विषय पर बात करने के लिए एक बैठक बुलाई गई। बैठक के दौरान भगतसिंह ने सुझाव दिया कि वायसराय अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए जब बिल को पास करने की घोषणा करेगा, उसी समय असेंबली में बम फेंककर क्रांतिकारी अपना विरोध प्रदर्शित करेंगे। इससे जन-साधारण के मन में जागृति पैदा होगी।

''क्या आप सब लोग इस बात से सहमत हैं?'' चंद्रशेखर आजाद ने अन्य साथियों से पूछा।

सभी ने एक स्वर में सुझाव की सराहना की।

''बम फेंकने की बात निश्चित हो गई। अब यह सोचना चाहिए कि बम कौन फेंकेगा?''

इस कार्य के लिए भगतसिंह ने स्वयं को प्रस्तुत किया।

लेकिन अचानक विजयकुमार खड़ा होकर बोला, ''मैं समझता हूँ कि भगतसिंह को इस काम के लिए न भेजा जाए, क्योंकि भगतसिंह और आजादजी हमारे दल के आधार-स्तंभ हैं। इन दोनों को हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ के संगठन कार्य और प्रचार कार्य के लिए सुरक्षित रखना दल के हित की दृष्टि से अत्यावश्यक है।''

''मेरी भी यही राय है।'' शिव वर्मा ने कहा, ''भगतसिंह के पकड़े जाने से हमें बहुत नुकसान होगा। संघ का प्रचार अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हुए भी हम भगतसिंह का त्याग नहीं करना चाहते।''

अंत में आजाद अपना निर्णय सुनाते हुए बोले, ''ठीक है, यह कार्य बटुकेश्वर दत्त और विजय कुमार सिन्हा करेंगे। असेंबली में बम फेंककर तथा बयान पत्र वितरित करके वे भगदड़ का लाभ उठाते हुए बाहर निकल आएँगे। वहाँ से मैं उन्हें सुरक्षित निकाल लाऊँगा।''

''नहीं, यह योजना मुझे स्वीकार नहीं है। केवल बयान पत्रों के वितरण से हमारे विचारों का सच्चा प्रचार नहीं हो सकता। न ही इससे हमारे उद्देश्य और नीतियों का स्पष्ट चित्र जनता के मन पर अंकित होगा; बल्कि हमारे बारे में झूठा प्रचार किया जाएगा, हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ को आतंकवादियों का दल कहा जाएगा। जिनके लिए हमने मर-मिटने का संकल्प लिया है, उन

देशवासियों की नजरों में हम घृणित हो जाएँगे। इसलिए मेरा कथन है कि हमें निर्भयता के साथ स्वयं को पुलिस के हवाले कर देना चाहिए। हमारे लिए अपने मन की बात को जनता तक स्पष्ट रूप से पहुँचाने का यही एकमात्र बलिदेवी का मंच बना है। उस मंच पर खड़े होकर हमें क्रांति का जयघोष करना चाहिए। मृत्यु और केवल मृत्यु ही हमारे प्रचार का एकमात्र प्रभावकारी साधन है।'' जोश में भरकर बोलते हुए भगतसिंह की आँखों के सामने फ्रांस की असेंबली में बम फेंकते वेलाँ का चित्र घूम रहा था।

इस विचार को सराहा गया और अंत में इसी के अनुरूप कार्य करने की घोषणा की गई। देश के लिए मर-मिटने के लिए बटुकेश्वर दत्त और विजयकुमार का चुनाव किया गया था, यह सोचकर ही उन दोनों का सीना गर्व से फूल गया। इस निर्णय के बाद दल का केंद्र दिल्ली में ही रखा गया। असेंबली में जाकर वहाँ की परिस्थितियों का निरीक्षण करने की जिम्मेदारी जयदेव कपूर को सौंपी गई।

असेंबली में प्रवेश करने के लिए प्रवेश-पत्र प्राप्त करना आवश्यक था। जयदेव ने इसके लिए एक तरकीब सोची। उसने असेंबली में पूछताछ कर पास देनेवाले कार्यालय में अपना नाम दिल्ली के 'हिंदू कॉलेज' के अर्थ विज्ञान के एक छात्र के रूप में लिखवाया था। इस तरह असेंबली के पुस्तकालय में जाने का प्रवेश-पत्र सरलता से प्राप्त कर लिया था। उस परिश्रमी छात्र पर कार्यालय के लोगों को विश्वास हो गया। उन्होंने उस छात्र को दर्शकों की गैलरी में बैठकर असेंबली की कार्रवाई देखने की अनुमति दे दी थी। किसी भी समय उनसे एक-दो पास प्राप्त होने लगे थे। जब पास की आवश्यकता होती थी, उस समय जयदेव कपूर किसी कांग्रेस सदस्य का पत्र दिखाकर परिचय के आधार पर दो-तीन प्रवेश-पत्र लाने लगा था। एक-दो बार आजाद और भगतसिंह भी उसके साथ असेंबली में हो आए थे।

यद्यपि इस कार्य के लिए बटुकेश्वर दत्त और विजयकुमार सिन्हा का चयन हो गया था; परंतु बाद में विजयकुमार सिन्हा के स्थान पर भगतसिंह ने स्वयं असेंबली जाने का निश्चय किया।

## धमाके

8 अप्रैल, 1930; आज असेंबली में 'जन-सुरक्षा बिल' और 'औद्योगिक विवाद बिल'– दो महत्त्वपूर्ण बिल पारित होने वाले थे। इन बिलों को पारित

करने का अर्थ गुलामी की बेड़ियों में जकड़े भारतीय समाज को एक और बेड़ी में जकड़ना था।

असेंबली में लोग एकत्रित होने लगे थे। दर्शकों के लिए आरक्षित गैलरी में दर्शक आकर बैठने लगे। नीचे विशाल हॉल में असेंबली के सदस्य अपने-अपने स्थानों पर बैठ चुके थे। अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधियों का नेतृत्व करनेवाले सर जॉन शूस्टर भी अपनी सीट पर बैठे हुए थे। उन्हीं के सामने विपक्षी दल के नेता पं. मोतीलाल नेहरू सहित अन्य नेतागण बैठे थे। कानून का विरोध कैसे किया जाए, इस बारे में सोचते हुए वे परस्पर विचार-विमर्श कर रहे थे।

ठीक उसी समय विस्फोट का भयंकर गर्जन सुनाकर बहरी सरकार तक जनता की आवाज पहुँचाने के लिए हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ के दो महानायक दर्शक दीर्घा में प्रवेश कर रहे थे।

जयदेव कपूर ने संकेत द्वारा भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को उनकी कुरसियाँ दिखा दीं। और फिर वह भी वहीं पास की कुरसी पर बैठ गया। वहाँ से स्पीकर की कुरसी स्पष्ट दिखाई दे रही थी, इसलिए वह स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था। भगतसिंह ने बटुकेश्वर दत्त का हाथ दबाकर अग्रिम घटनाक्रम के लिए तैयार रहने का संकेत किया।

नीचे प्रश्नोत्तरों की झड़ी लगी हुई थी, लेकिन ऊपर दोनों वीर उचित समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सहसा सर जॉन शूस्टर खड़े हो गए। बटुकेश्वर ने जयदेव की ओर देखा। वह संकेत समझ गया और उनके प्रवेश-पत्रों को लेकर चुपचाप वहाँ से बाहर चला गया।

सर जॉन शूस्टर घोषणा करते हुए बोले, ''आज हमारे वायसराय ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए 'जन-सुरक्षा बिल' और 'औद्योगिक विवाद बिल' पास किया है। यह बिल तत्काल अमल में आ जाएगा और...''

बात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि एक प्रचंड धमाके से पूरी असेंबली गूँज उठी। बम सामने की दीवार से टकराया था।

उस अप्रत्याशित विस्फोट से समस्त सभा-भवन पल भर के लिए सन्न रह गया। तभी उस निस्तब्ध और अवाक् स्थिति के बीच दूसरा बम फेंका गया। उसके धमाके के साथ ही चारों ओर भगदड़ मच गई। नेताओं एवं अंग्रेज अधिकारियों के साथ-साथ पुलिस के सिपाही भी बाहर की ओर भागे। असेंबली

में कामकाज का अवलोकन करनेवाला अधिकारी डर से बेहोश हो गया, जबकि सर जॉन शूस्टर ने बेंच के नीचे छिपने में ही अपनी भलाई समझी। सब जान बचाकर बाहर की ओर भाग रहे थे। इस भगदड़ में वे सुरक्षाकर्मी भी सम्मिलित थे, जो असेंबली में सुरक्षा के लिए तैनात किए गए थे।

उसी समय काले-नीले धुएँ से भरे हुए सभागार में लाल अक्षरों से छपे हुए परचों की वर्षा हो रही थी। भागते-दौड़ते लोगों को गर्जन सुनाई दे रही थी, ''इनकलाब जिंदाबाद।''

परचों पर लिखा था–

'बहरों को सुनाने को धमाका जरूरी है'– प्रसिद्ध फ्रांसीसी अराजकतावादी शहीद वेलाँ के ये अमर शब्द हमारे कार्य के औचित्य के साक्षी हैं।

गत दस वर्षों में प्रशासनिक सुधारों की ओट में जो कुछ किया गया है, उस अपमानजनक निंदनीय कहानी को हम दोहराना नहीं चाहते। हम भारत राष्ट्र के नेताओं के साथ किए गए अपमान का भी उल्लेख नहीं करना चाहते, जो उस सदन में किए गए हैं, जिसे 'भारतीय पार्लियामेंट' कहा जाता है।

हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस समय भी कुछ लोग साइमन कमीशन द्वारा सुधारों के नाम पर जो जूठन मिलने की संभावना है, उसकी आशा लगाए हुए हैं और चिचोड़ी हुई हड्डियों के बँटवारे के लिए झगड़ा तक करने लग गए हैं। इसी समय सरकार भी भारतीय जनता पर दमनकारी कानून लादती जा रही है, जैसे– 'सार्वजनिक सुरक्षा बिल' और 'औद्योगिक विवाद बिल'। इनके साथ ही आनेवाले अधिवेशन में 'अखबारों द्वारा राजद्रोह रोकने का कानून' (प्रेस सेडीशन एक्ट) जनता पर कस दिए जाने की भी धमकी दी जा रही है। मजदूर नेता, जो खुले रूप में अपना कार्य कर रहे थे, अंधाधुंध गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का इरादा क्या है। विदेशी सरकार और उसके शोषक नौकरशाह जो कुछ भी उनके मन में आए, करें; लेकिन हमारा यह कर्तव्य है कि जन-साधारण के सामने विदेशी सरकार के काले कारनामों का सही चित्र प्रस्तुत करते रहें।

जनता के प्रतिनिधियों का यह सबसे पहला कर्तव्य है कि वे अपने-अपने क्षेत्रों का दौरा कर जनता-जनार्दन को आनेवाली क्रांति के लिए तैयार करें। भारतीय जनता अपने सशक्त विरोध द्वारा अन्याय पर टिकी हुई हत्यारी ब्रिटिश सरकार को यह बता दे कि पब्लिक सेफ्टी बिल, ट्रेड

डिस्प्यूट बिल और लाला लाजपतराय की नृशंस हत्या हमें हमारे मार्ग से, स्वाधीनता के पवित्र संकल्प से नहीं डिगा सकते।

हम अपने इस विश्वास को पुनः दोहराना चाहते हैं कि संसार के इतिहास ने अनेक बार इस ज्वलंत सच्चाई की घोषणा की है कि व्यक्तियों की हत्या करना तो सरल है, किंतु विचारों की हत्या नहीं की जा सकती।

बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गए, परंतु विचार आज भी जीवित हैं। फ्रांस के ब्रूवाँ और रूस के जार– सब चले गए, जबकि क्रांतिकारी विजय और सफलता के साथ आगे बढ़ गए।

हमें यह स्वीकार करते हुए खेद होता है कि हम लोग– जो मनुष्य-जीवन को अत्यंत पवित्र मानते हैं; हम जो बड़े उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न देखते हैं, जिसमें मनुष्य पूर्ण शांति और स्वतंत्रता का उपभोग करता होगा– उन्हें भी मानव-रक्त बहाना पड़ा है।

क्रांति की देवी, जो सबको स्वतंत्रता प्रदान करेगी, का अभिषेक करने के लिए कुछ व्यक्तियों का बलिदान होना आवश्यक है। तभी मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण असंभव हो सकेगा।

## गिरफ्तारी

कुछ ही देर में सभाभवन खाली हो गया। पं. मोतीलाल नेहरू, पं. मदनमोहन मालवीय, विट्ठलभाई पटेल और मुहम्मद अली जिन्ना– इतने बड़े हॉल में केवल चार ही लोग अपनी कुरसी पर शांतिपूर्वक बैठे थे।

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त अपने-अपने स्थानों पर प्रसन्न मुद्रा में खड़े थे। उनके मुखमंडल पर आत्मसमर्पण का अनोखा आनंद झलक रहा था। उनकी आँखों में चमक थी, आवाज में दृढ़ता थी। वे बार-बार गरज रहे थे–

''इनकलाब जिंदाबाद! साम्राज्यवाद नष्ट हो! दुनिया के मजदूरो, एक हो जाओ!''

बहुत देर के बाद सिपाहियों का एक दल डरते-डरते सभाभवन में आया। खाकी रंग की कमीज-पैंट और सिर पर फेल्ट हैट पहने इन साहसी युवकों को देखकर सिपाहियों के दल का प्रमुख अधिकारी टेरी अवाक् रह गया। उसने दूर से ही पूछा, ''बम फेंकने का भयंकर कार्य आपने ही किया है?''

अपनी रिवॉल्वर से खेलते हुए भगतसिंह मुसकराकर बोले, ''हाँ, यह

काम हमने ही किया है।''

इतना कहने के बाद भी सिपाही उन्हें गिरफ्तार करने आगे नहीं बढ़ रहा था। इसलिए उसके भय को देखकर भगतसिंह और बटुकेश्वर ने अपने-अपने रिवॉल्वर सामनेवाली मेज पर रख दिए। जेब में रखी सब गोलियाँ भी पास में रख दीं। भगतसिंह ने अपने हाथ आगे बढ़ाते हुए मुसकराते हुए बंदी बनाने का संकेत किया।

आश्चर्यचकित टेरी साहस जुटाकर नपे कदमों से आगे बढ़ा। भगतसिंह ने अपना हैट उतारकर हाथ में ले लिया और दोनों पुलिस के पहरे में शांतचित्त असेंबली से बाहर आ गए।

थोड़ी देर बाद ही दोनों कैदियों को लेकर पुलिस की कार पुलिस चौकी की ओर चल दी।

## पिता-पुत्र का मिलन

पुलिस स्टेशन में पुलिस अधिकारी ने भगतसिंह को अपना बयान दर्ज करवाने के लिए कहा। लेकिन उन्होंने यह कहते हुए इनकार कर दिया कि वे अपना बयान अदालत के सामने देंगे। त्वरित कार्रवाई करते हुए दोनों कैदियों को जेल भेज दिया गया। इसी बीच सरदार किशनसिंह ने पुत्र से मिलने की अर्जी दी। परंतु उन्हें मिलने नहीं दिया गया। भगतसिंह को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने 26 अप्रैल, 1929 को दिल्ली जेल से अपने पिता को एक पत्र लिखा। इस पत्र के अनुसार–

दिल्ली जेल

26.04.1929

पूज्य पिताजी महाराज,

वंदे मातरम्!

अर्ज है कि हम लोग 22 अप्रैल को पुलिस की हवालात से दिल्ली जेल में स्थानांतरित कर दिए गए थे और इस वक्त दिल्ली जेल में ही हैं। मुकदमा 7 मई को जेल के अंदर ही शुरू होगा। गालिबन एक माह में सारा ड्रामा खत्म हो जाएगा। ज्यादा फिक्र करने की जरूरत नहीं है। मुझे मालूम हुआ है कि आप यहाँ तशरीफ लाए थे, किसी वकील वगैरह से भी बातचीत की थी और मुझसे मिलने की कोशिश भी की थी। मगर सब इंतजाम न हो सका। मुझे कपड़े परसों

मिले। मुलाकात आप जिस दिन तशरीफ लाएँ, हो सकेगी। वकील वगैरह की कोई खास जरूरत नहीं है। दो-एक बातों के बारे में थोड़ा सा मशविरा लेना चाहता हूँ। मगर वे बातें कोई खास अहमियत नहीं रखतीं। आप खामख्वाह ज्यादा तकलीफ न कीजिएगा। अगर आप मिलने के लिए आएँ तो अकेले ही आइएगा। वाल्दा साहिबा को साथ न लाइएगा। खामख्वाह वह रो देंगी और मुझे भी कुछ तकलीफ जरूर होगी। घर के सब हालात आपसे मिलने पर ही मालूम हो सकेंगे।

हाँ, अगर हो सके तो गीता रहस्य, नेपोलियन की मोटी पुस्तक 'सुआने उमरी' (जीवन-चरित्र), जो आपको मेरी लाइब्रेरी में मिल जाएगी और अंग्रेजी के कुछ आला नॉवेल (उपन्यास) लेते आइएगा। द्वारकादास लाइब्रेरीवालों से शायद कुछ नॉवेल मिल सकें। खैर, देख लीजिएगा। इस वक्त पुलिस हवालात और जेल में हमारे साथ निहायत अच्छा सलूक हो रहा है। आप किसी किस्म की फिक्र न कीजिएगा।

मुझे आपका पता मालूम नहीं है, इसलिए इस पते (कांग्रेस दफ्तर) पर लिख रहा हूँ।

— भगतसिंह

बहुत प्रयास करके बाद अंततः सरदार किशनसिंह को मिलने की अनुमति मिल गई। 3 मई, 1929 को उन्होंने जेल में भगतसिंह से मुलाकात की। उस समय बैरिस्टर आसफ अली भी उनके साथ थे। मुलाकात के दौरान किशनसिंह ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा, ''चिंता मत करना भगत! हम पूरी ताकत और कानूनी दाँव-पेचों के अनुसार मुकदमा लड़ेंगे। सरकार के पास तुम्हारे खिलाफ ठोस सबूत नहीं हैं। मुझे उम्मीद है कि अदालत में हमारी दलीलों को कोई नहीं काट सकेगा और जज तुम्हें छोड़ने के लिए मजबूर हो जाएगा।''

''लेकिन पिताजी, मैं बचाव की दृष्टि से मुकदमा लड़ने के पक्ष में नहीं हूँ। मेरी लड़ाई सत्य और न्याय की लड़ाई है; सिद्धांतों के प्रचार का एक साधन है। इसलिए मैं यह मुकदमा बचाव के लिए नहीं बल्कि देश के कोने-कोने तक क्रांति की ज्वाला भड़काने के लिए तथा इनकलाब का नारा बुलंद करने के लिए लड़ूँगा।''

यद्यपि भगतसिंह अपना निश्चय बता चुके थे, लेकिन फिर भी बैरिस्टर आसफ अली ने उनसे केस संबंधी कानूनी पूछताछ की, फिर दोनों लौट गए।

□

अध्याय 14

# इनकलाब जिंदाबाद

''इनकलाब जिंदाबाद!'' अदालत में कदम रखते ही भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने क्रांति की गर्जना की, जिसे सुनकर जज मिस्टर मिड्लटन के माथे पर बल पड़ गए; भौंहें सिकुड़ गईं।

सामने मेज पर हथौड़े से चोट करते हुए वे तीव्र स्वर में बोले, ''ऑर्डर! ऑर्डर!''

भगतसिंह मुसकराए।

'इनकलाब जिंदाबाद' के शब्द राजसत्ता के हर नौकर पर मर्माघात किया करते थे। मजिस्ट्रेट मिस्टर पूल भी निचली अदालत में कितने खीज पड़े थे। उन्होंने चिल्लाकर कहा था, ''इन इनकलाबियों के हाथ-पैरों में बेड़ियाँ कस दो।''

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के कठघरे में जाकर खड़े हो जाने पर सरकारी वकील ने अपनी दलील पेश की, ''मीलॉर्ड! इन दोनों पर धारा 307 के अंतर्गत मनुष्य हत्या का प्रयत्न करने तथा धारा 3 के अनुसार बम-विस्फोट करने का आरोप लगाया गया है। सार्जेंट टेरी की गवाही के साथ-साथ ये उन उन्नीस लोगों की गवाहियाँ हैं, जिन्होंने बड़ी होशियारी और चालाकी से अपराधियों को गिरफ्तार किया है।''

वकील की दी हुई फाइल को जज साहब ने सरसरी तौर पर देखा। वास्तव में वे फाइल पहले ही पढ़ चुके थे। लेकिन उन कागजातों को पढ़ने का अभिनय करते हुए उन्होंने कैदियों की ओर देखकर पूछा, ''अपने ऊपर लगे इन आरोपों के बारे में तुम कुछ कहना चाहते हो?''

''जी हाँ! ये सारी गवाहियाँ और सबूत बनावटी हैं।'' भगतसिंह ने शांत स्वर में कहा।

''इसका मतलब यह है कि तुमने असेंबली में बम नहीं फेंके हैं?'' सरकारी वकील ने क्रोध में भरकर पूछा।

''जी नहीं! बम हमने ही फेंके थे। लेकिन जैसा कि गवाह कहते हैं, वह सही नहीं है। उन्होंने हमारे हाथ से रिवॉल्वर छीने नहीं थे, हमने स्वयं ही उन्हें एक ओर रख दिया था।''

''लेकिन बम फेंककर लोगों को मारने का तुमने जो भयंकर अपराध किया है, उससे तुम इनकार तो नहीं कर सकते?''

''यह आरोप भी गलत है। हमें मानवता से जितना प्रेम है उतना तो आपको भी नहीं है। हमारे मन में मानव जीवन के प्रति अपार करुणा है। इसीलिए तो हमने अपने देशवासियों, अपने किसान-मजदूर, गरीब भाई-बहनों को अत्याचार की जंजीरों से बचाने के लिए असेंबली में बम विस्फोट किया है। सभा-भवन के उपस्थितों में से किसी के भी प्रति हमारे मन में वैरभाव नहीं था। अगर वह होता तो हम सीधे उस व्यक्ति को निशाना बनाकर उसी पर बम फेंकते। हम शूस्टर साहब को मार सकते थे, लेकिन हमने वह सब नहीं किया। हमने खाली जगह पर बम फेंके थे। हम किसी को मारना ही नहीं चाहते थे।''

''अच्छा, तो तुम सिर्फ आतिशबाजी करना चाहते थे?'' सरकारी वकील ने व्यंग्यपूर्वक पूछा।

भगतसिंह ने उसकी ओर तीखी दृष्टि से देखा और फिर हँसकर बोले, ''हाँ, अपनी जिंदगी की आतिशबाजी कर हम यहाँ इस कठघरे में आना चाहते थे। जान की बाजी लगाकर इस मंच से हम अपने देशवासियों से कहना चाहते थे कि यह विधानसभा एक ढोंग है। यह आप लोगों का कल्याण नहीं करेगी, बल्कि मायाजाल में फँसाकर आपकी गरदन को गुलामी के पाश में और अधिक जकड़ देगी। समय पर सावधान हो जाओ, सचेत हो जाओ।''

भगतसिंह द्वारा गहराई से कहे गए उद्गार अदालत में उपस्थित लोगों के मन को स्पर्श कर गए। सबकी आँखें उस तेजस्वी मुद्रा पर स्थिर हो गई थीं। उसका एक-एक शब्द लोग मग्न होकर सुन रहे थे। उनमें से किसी ने यह सोचा तक नहीं था कि बम फेंकने के पीछे इस तरह का उद्देश्य होगा।

भगतसिंह ने आगे कहा, ''हम जब इनकलाब जिंदाबाद का नारा लगाते हैं तो लोगों को लगता है कि हमारी क्रांति मात्र बम-बंदूकों और हिंसा पर आधारित है, व्यक्तिगत द्वेष की बुनियाद पर खड़ी है। परंतु ऐसा नहीं है। हमारी क्रांति की धारणा इतनी तुच्छ नहीं है। अत्याचारी शासन को ध्वस्त करके हम

क्रांति करना चाहते हैं। लेकिन सिर्फ विनाश करना ही क्रांति नहीं है। उसके स्थान पर कल्याणकारी व्यवस्था द्वारा किया जानेवाला नव-निर्माण ही सच्ची क्रांति है। हम प्राणपण से उसकी घोषणा करते हैं। उसी क्रांति के हम नारे लगाते हैं।''

थोड़ा रुककर भगतसिंह ने न्यायालय में सबके चेहरे देखे। माथे पर उभरी हुई पसीने की बूँदों को पोंछा और अपनी आवेश भरी आवाज को सौम्य बनाते हुए बोले, ''न्यायाधीश महोदय, हमें विश्वास है कि आप हमें कठोरतम दंड देंगे। लेकिन हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि साम्राज्यवादी राजसत्ता एक-दो व्यक्तियों को मसल सकती है, नष्ट कर सकती है; लेकिन इससे उनके विचारों, सिद्धांतों और अवधारणाओं को नष्ट नहीं किया जा सकेगा। महोदय, बहरों को सुनाने, उनको समय पर चेताने और चेतावनी देने के लिए असेंबली में हम लोगों ने बम की विस्फोटक आवाज को बुलंद किया है, यह बात हम स्वीकार करते हैं। इसके लिए हम हर तरह की सजा भोगने के लिए तैयार हैं, क्योंकि हमारी पूरी जिंदगी क्रांति की बलिवेदी को समर्पित है।''

दिनांक 6 जून को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने वक्तव्य प्रस्तुत किया और सोमवार दिनांक 10 जून के दिन उनका मुकदमा समाप्त हुआ। 12 जून को अदालत में आते ही 140 पृष्ठों का फैसला घोषित किया गया। उसमें कहा गया कि ''उद्देश्यों की तारीफ के कितने भी पुल बनाए गए हों, लेकिन इससे अपराध गौण नहीं होता। इसलिए गैर-कानूनी तरीकों से तोड़-फोड़ करने के आरोप पर हम इन दोनों अपराधियों को आजीवन कारावास अर्थात् कालेपानी की सजा दे रहे हैं।''

फैसला सुनते ही सब लोग पल भर के लिए अवाक् रह गए। सजा होने का विश्वास था, परंतु आजीवन कारावास की किसी ने कल्पना नहीं की थी। लोगों में कानाफूसी होने लगी; भावुक लोगों की आँखों से आँसू बहने लगे।

लेकिन सजा सुनकर भी भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त मुसकराते हुए 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे लगा रहे थे।

## आमरण अनशन

अदालत ने अपना फैसला सुना दिया था। लेकिन सांडर्स हत्या में भगतसिंह का नाम होने के कारण उससे संबंधित मुकदमे में अभी कार्रवाई होनी शेष थी। अत: जज ने भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को लाहौर जेल में

स्थानांतरित करने का आदेश पारित कर दिया। उसी दिन उन्हें अलग-अलग कंपार्टमेंट में बिठाकर ट्रेन द्वारा दिल्ली से लाहौर ले जाया गया। स्टेशन आने से पूर्व भगतसिंह के आग्रह पर एक सहृदय सार्जेंट कुछ देर के लिए उन्हें बटुकेश्वर के कंपार्टमेंट में ले आया। इस दौरान दोनों ने भविष्य की योजनाओं पर विचार-विमर्श किया। उन दिनों जेलों में कैदियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। उन्हें न तो भरपेट पौष्टिक आहार मिलता था और न ही स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध थीं। इतना ही नहीं, उनके साथ अमानवीय और पाशविक व्यवहार किया जाता था। इसके फलस्वरूप अनेक कैदी कुपोषण और अन्य जानलेवा बीमारियों से ग्रसित होकर जेल में ही दम तोड़ देते थे तथा कई अन्य जेल से बाहर आकर जीवन भर भयंकर रोगों को ढोते थे।

यद्यपि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को यूरोपियन क्लास की श्रेणी में रखा गया था, जहाँ उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। लेकिन भगतसिंह तो जैसे अपना सर्वस्व देश पर लुटाने को आतुर थे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि कैदियों की दुरवस्था सुधारने तथा सरकारी अमानवीय कृत्य को रोकने के लिए जेल पहुँचते ही वे आमरण अनशन आरंभ कर देंगे। हर बार की तरह इस बार भी बटुकेश्वर दत्त इस निश्चय में एक विश्वसनीय सहायक की तरह उनके साथ थे।

लाहौर पहुँचकर बटुकेश्वर को लाहौर सेंट्रल जेल और भगतसिंह को मियाँवाली जेल में भेज दिया गया।

जेल में भगतसिंह की मुलाकात उन राजनीतिक क्रांतिकारियों से हुई, जो सरकार-विरोधी आंदोलनों एवं गतिविधियों में सम्मिलित होने के कारण अनेक वर्षों से सजा भोग रहे थे। उनके सहयोग से 14 जून, 1929 को जेल-सुधार संबंधी माँगों को लेकर भगतसिंह ने अनिश्चित काल के लिए भूख-हड़ताल की घोषणा कर दी।

सांडर्स हत्याकांड के अंतर्गत पुलिस ने जगह-जगह छापे मारकर सुखदेव, यतींद्रनाथ, राजगुरु, जयदेव कुमार, गया प्रसाद, अजय घोष, शिव वर्मा आदि क्रांतिकारियों को पकड़ लिया था। उन सभी को लाहौर की बोर्स्टल जेल में रखा गया था। उन्हें जब भगतसिंह के आमरण अनशन की बात पता चली तो 15 जून, 1929 को वे भी इस भूख-हड़ताल में सम्मिलित हो गए।

17 जून, 1929 को भगतसिंह ने मियाँवाली जेल से पंजाब राज्य के इंस्पेक्टर जनरल मिस्टर जेल को एक पत्र लिखा। इस पत्र के अनुसार–

''प्रिय महोदय,

इस सच्चाई के बावजूद कि सांडर्स शूटिंग केस में गिरफ्तार दूसरे नवयुवकों के साथ ही मुझ पर भी मुकदमा चलेगा, मुझे दिल्ली से मियाँवाली जेल में स्थानांतरित कर दिया गया है। उस मामले की सुनवाई 26 जून, 1929 से आरंभ होने वाली है। मैं यह समझने में असमर्थ रहा हूँ कि मुझे यहाँ स्थानांतरित करने के पीछे कौन सी भावना काम कर रही है?

जो भी हो, न्याय की माँग है कि हर एक अभियुक्त को वे सुविधाएँ मिलनी चाहिए, जिससे वह अपने मुकदमे की तैयारी कर सके और मुकदमा लड़ सके। किंतु यहाँ रहते हुए मैं अपना वकील कैसे रख सकता हूँ, क्योंकि यहाँ रहने पर मेरे लिए अपने पिताजी तथा अन्य रिश्तेदारों से संपर्क रखना मुश्किल है। यह स्थान काफी अलग-थलग है, रास्ता कठिन है और लाहौर से काफी दूर है।''

पत्र में लिखी बातें कानूनी दृष्टि से एकदम सटीक थीं। अत: शीघ्र कार्रवाई करते हुए एक सप्ताह के अंदर ही भगतसिंह को लाहौर सेंट्रल जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। अपने साथियों के पास पहुँचकर भगतसिंह प्रसन्नता से भर उठे। उनमें दुगुने उत्साह का संचार हो गया।

शीघ्र ही समाचार-पत्रों में इस भूख-हड़ताल के ऊपर विस्तृत लेख प्रकाशित होने लगे; कैदियों के प्रति सरकार के व्यवहार की आलोचना की जाने लगी। इसी संदर्भ में 30 जून, 1929 को अमृतसर के जलियाँवाला बाग में नगर कांग्रेस और नौजवान भारत सभा की संयुक्त सभा हुई, जिसमें सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया गया—

''अमृतसर के नागरिकों की यह सभा भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त द्वारा चौदह दिनों से राजनीतिक कैदियों से दुर्व्यवहार के विरोध में शुरू हुई भूख-हड़ताल की प्रशंसा करती है तथा उनके साथ हमदर्दी प्रकट करते हुए नौकरशाही को यह चेतावनी देती है कि यदि उनके जीवन को कहीं कोई खतरा हुआ तो इसकी जिम्मेदारी उसी की होगी।''

10 जुलाई, 1929 को लाहौर में मजिस्ट्रेट श्री कृष्ण की अदालत में सांडर्स हत्याकांड की सुनवाई आरंभ हुई। भगतसिंह का आमरण अनशन निरंतर जारी रहा था, जिसके फलस्वरूप उनका तथा उनके साथियों का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा था। यही कारण था कि उन्हें और बटुकेश्वर दत्त

को स्ट्रेचर पर लिटाकर अदालत लाया गया। उनकी यह दशा देखकर उपस्थित जनसमूह की आँखों में आँसू उमड़ आए।

14 जुलाई, 1929 को भगतसिंह ने होम मेंबर के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें इन माँगों का उल्लेख किया गया–

- राजनीतिक कैदी होने के कारण हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिए। हमारे भोजन का स्तर यूरोपीय कैदियों के समान होना चाहिए। हम उसी खुराक की माँग नहीं करते, लेकिन स्तर वही होना चाहिए।
- परिश्रम के नाम पर जेलों में अपमानजनक काम करने के लिए हमें मजबूर नहीं किया जाना चाहिए।
- बिना रोक-टोक के पूर्व स्वीकृत पुस्तकें एवं लिखने का सामान लेने की सुविधा मिलनी चाहिए।
- प्रत्येक कैदी को कम-से-कम एक दैनिक समाचार-पत्र अवश्य मिलना चाहिए।
- प्रत्येक जेल में राजनीतिक कैदियों का एक विशेष वार्ड होना चाहिए, जिसमें उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की सुविधा होनी चाहिए, जो यूरोपीय के लिए होती है और एक जेल में रहनेवाले सभी राजनीतिक कैदी एक वार्ड में इकट्ठे रहने चाहिए।
- स्नान की सुविधा मिलनी चाहिए।
- साफ एवं स्वच्छ कपड़े मिलने चाहिए।
- यू.पी. जेल-सुधार कमेटी में श्री जगत नारायण और खान बहादुर हाफिज हिदायत हुसैन की इस सिफारिश को कि राजनीतिक कैदियों के साथ अच्छी श्रेणी के कैदियों जैसा व्यवहार होना चाहिए, हम पर भी लागू होना चाहिए।

भगतसिंह द्वारा प्रस्तुत जेल-सुधार संबंधी तथ्य अकाट्य एवं तर्कसंगत थे। लेकिन उन्हें लागू करना सरकार के लिए सम्मान का प्रश्न बन चुका था। उन्होंने उपर्युक्त तथ्यों को अस्वीकार कर दिया।

भूख-हड़ताल की स्थिति में भी सांडर्स हत्याकांड की सुनवाई के दौरान अभियुक्तों को हथकड़ियों में जकड़कर अदालत में लाया जाता था। 17 जुलाई को अदालत में भगतसिंह ने हथकड़ी लगाने का विरोध करते हुए कहा कि ''एक मामूली सिपाही के साथ हमें हथकड़ी में बाँधना हम देशभक्तों के सम्मान

के खिलाफ है। इससे हम मुकदमे से जुड़े आवश्यक कानूनी तथ्य नोट नहीं कर पाते। यदि ऐसा ही करना है तो न्याय का यह तमाशा बंद कर दीजिए और पुलिस को अपना काम करने दीजिए।'' उनकी दलीलों से खीझकर जज श्री कृष्ण ने कैदियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए जेल सुपरिंटेंडेंट के नाम आदेश जारी कर दिया।

एक ओर कैदियों का गिरता स्वास्थ्य सरकार के लिए मुसीबत बना हुआ था, वहीं दूसरी ओर उनके सामने झुकने को वह बिलकुल तैयार नहीं थी। अंततः कूटनीति का सहारा लिया गया, जिसके अंतर्गत भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के लिए अलग भोजन की व्यवस्था की गई। लेकिन यह आमरण अनशन व्यक्तिगत स्वार्थ पर आधारित न होकर परहित और दूसरों के कल्याण से जुड़ा था, इसलिए उन्होंने भोजन करने से इनकार कर दिया। साथ ही शर्त रख दी कि सरकारी बजट में कैदियों को मिलनेवाले भोजन की मात्रा और स्तर का विस्तृत ब्यौरा प्रकाशित होना चाहिए तथा उसे सभी राजनीतिक कैदियों के लिए समान रूप से लागू किया जाना चाहिए।

इसी बीच 21 जुलाई, 1929 को नौजवान भारत सभा के सदस्यों ने 'भगतसिंह दिवस' मनाया। इस अवसर पर लगभग दस हजार लोगों ने सम्मिलित होकर आमरण अनशन पर बैठे कैदियों के स्वास्थ्य के लिए ईश्वर से प्रार्थना की।

## यतींद्रनाथ की शहादत

भूख-हड़ताल पर बैठे कैदियों का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा था; भूख की अधिकता से हड्डियाँ दिखाई देने लगी थीं। शरीर इतने कमजोर हो गए थे कि उनमें बैठने तक की ताकत शेष नहीं थी। इतना कुछ होने के बाद भी उनके इरादे दृढ़ थे; वे चट्टान की तरह अपने निश्चय पर अडिग थे; पीछे हटना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था। इससे सरकार की परेशानियाँ बढ़ती जा रही थीं। अपनी माँगें मनवाने के लिए कैदी जिद पर अड़े हुए थे। उनकी बिगड़ती हालत को देखकर देश के विभिन्न भागों में आंदोलन होने लगे। अनेक प्रसिद्ध नेता भी उनके समर्थन में उतर आए थे। सरकार पर निरंतर दबाव बढ़ता जा रहा था। उसके लिए कैदियों का अनशन तोड़ना जरूरी हो गया। लेकिन उनकी माँगें मानना भी उसे स्वीकार नहीं था। अंततः उन्हें जबरदस्ती भोजन करवाने की कोशिश की गई। उनकी कोठरियों में खुशबूदार भोजन रखा गया; पानी के स्थान पर दूध के घड़े रखवाए गए। लेकिन इसमें भी असफलता हाथ लगी। आजादी

के इन मतवालों का अनशन तोड़ना इतना सरल नहीं था जितना सरकार ने कल्पना की थी।

बोस्टल जेल में अनशनकारियों की हालत अधिक बिगड़ी तो भगतसिंह ने उन्हें अनशन समाप्त करने के लिए संदेश भिजवाया। इस संदेश में उन्होंने कहा था कि ''आपके समर्थन से हमें बहुत बल मिला है। लेकिन अब आप अनशन समाप्त कर दें और सत्याग्रह की लड़ाई आखिरी दम तक लड़ने की जिम्मेदारी मुझपर और बटुकेश्वर पर छोड़ दें।''

'सरकार के विरुद्ध भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त अकेले लड़ें', यह बात यतींद्रनाथ जैसे सच्चे देशभक्त को स्वीकार नहीं थी। यद्यपि उनका स्वास्थ्य तेजी से खराब होता जा रहा था, तथापि उन्होंने अपने प्रण पर दृढ़ रहते हुए अनशन समाप्त करने से साफ इनकार कर दिया।

यतींद्रनाथ की हालत बिगड़ रही थी। जाँच के बाद डॉक्टरों ने रिपोर्ट दी कि उनके शरीर में रक्त का दौरा केवल हृदय के आस-पास ही रह गया है। उनके शेष अंग निष्क्रिय हो चुके हैं। इसलिए उनके जीवित रहने की उम्मीद लगभग समाप्त हो गई है। इस रिपोर्ट से सरकार के होश उड़ गए। जेल में अनशनकारी की मृत्यु से देश में गुस्से का कितना बड़ा सैलाब आ जाएगा, इस बात को सोचकर ही अंतत: 2 सितंबर को सरकार ने एक जेल उप-समिति का गठन किया। इसी बीच गवर्नर के परामर्श पर भगतसिंह को भी बोस्टल जेल स्थानांतरित कर दिया गया था। समिति के सदस्यों ने कैदियों से मुलाकात की और घोषणा कर दी कि यदि वे अपना अनशन तोड़ दें तो यतींद्रनाथ को छोड़ दिया जाएगा।

कोमल-हृदयी भगतसिंह मित्र को इस प्रकार मरते हुए नहीं देख सकते। उनके परामर्श पर अन्य कैदियों ने अनशन समाप्त कर दिया। लेकिन दृढ़-निश्चयी यतींद्रनाथ ने पीछे हटने से इनकार करते हुए अनशन जारी रखा। कैदियों का अनशन समाप्त करवाकर सरकार भी अपनी बात से हट गई। उसकी इस नीति से अनशनकारी हक्के-बक्के रह गए। मुँह-तोड़ जवाब देने के लिए 4 सितंबर से वे पुन: अनशन पर बैठ गए।

13 सितंबर का दिन भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में काले दिन के रूप में आया। इस दिन दोपहर एक बजकर पाँच मिनट पर देशभक्त यतींद्रनाथ ने सदा के लिए आँखें मूँद लीं। अंग्रेजों के विरुद्ध अंतिम साँस तक लड़नेवाले इस महान् शहीद ने जीवन के बदले खुशी-खुशी मृत्यु का वरण कर लिया।

यतींद्रनाथ की शहादत से पूरा देश स्तब्ध रह गया। देखते-ही-देखते सरकार-विरोधी स्वर तेज हो गए। जगह-जगह पर आंदोलनों द्वारा सरकार का विरोध होने लगा। समाचार-पत्रों में यह घटना सुर्खियों में छपी। यतींद्रनाथ की मृत्यु ने सरकार को अपराधी बनाकर जनता के कठघरे में खड़ा कर दिया था।

अब सरकार इस अनशन को शीघ्र समाप्त करना चाहती थी। क्रांतिकारियों की दृढ़ता के आगे उसने झुकना स्वीकार कर लिया था। अत: तत्कालीन नेताओं से मिलकर भगतसिंह को अनशन समाप्त करने के लिए समझाया गया और कमेटी द्वारा प्रस्तुत की गई सिफारिशें भी स्वीकार कर ली गईं।

अंतत: 5 अक्टूबर, 1929 को भगतसिंह ने अपने ऐतिहासिक अनशन की समाप्ति की घोषणा कर दी। उनका यह अनशन 114 दिनों तक चला था। इस अवसर पर सभी अनशनकारियों ने एक साथ मिलकर 'दाल-रोटी' का भोजन कर अनशन समाप्त किया।

□

अध्याय 15

# सरफरोशी की तमन्ना

सांडर्स हत्याकांड में चौबीस लोगों को अभियुक्त बनाया गया। इनमें से तेरह क्रांतिकारी– भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त, सुखदेव, राजगुरु, कमलनाथ तिवारी, किशोरीलाल, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, सुरेंद्र पांडे, अजय घोष, कुंदनलाल, देशराज और प्रेमदत्त– पुलिस द्वारा पकड़ लिये गए थे। छह क्रांतिकारी– चंद्रशेखर आजाद, भगवान दास, कैलाशपति, भगवतीचरण वोहरा, यशपाल और सतगुरु दयाल फरार घोषित कर दिए गए थे। शेष पाँच लोग दंड-भय तथा व्यक्तिगत स्वार्थ एवं कमजोरियों के कारण सरकारी गवाह बन गए। इनमें फणींद्रनाथ घोष, जयगोपाल, मनमोहन बनर्जी, हंसराज वोहरा तथा ललितकुमार मुखर्जी सम्मिलित थे। क्रांति की डगर पर एक साथ चलनेवाले ही एक-दूसरे के शत्रु बन जाएँगे, इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। लेकिन वास्तविकता के धरातल पर यही बात सत्य थी। अपने मित्र ही शत्रु बनकर सामने के कठघरे में खड़े थे और एक-एक कर सभी राज उगल रहे थे।

पकड़े गए तेरह क्रांतिकारियों की टोली भगतसिंह के प्रत्येक इशारे पर मरने-मिटने को तैयार थी। देश पर मर मिटनेवाले ये जुनूनी देशभक्त अपने रक्त के कतरे-कतरे को देश के लिए बहा देना चाहते थे। उनके दिल, दिमाग, शरीर की एक-एक नस में देशभक्ति का लहू दौड़ रहा था। हथकड़ियों में जकड़े जब ये सिंह अदालत में आते थे तो 'इनकलाब जिंदाबाद' और 'वंदे मातरम्' के नारों से कक्ष गुंजायमान हो उठता। उनके होंठों पर एक ही गीत होता–

''सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमाँ,
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है।

ऐ शहीदे मुल्कों मिल्लत, मैं तेरे ऊपर निसार,
अब तेरी हिम्मत की चर्चा गैर की महफिल में है।
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।''

यह गीत इतना प्रसिद्ध हो गया कि देश के कोने-कोने में युवक सार्वजनिक मंच पर इसका गान करने लगे।

## विशेष ट्रिब्यूनल

सरकार इस मुकदमे को गुपचुप तरीके से समाप्त करना चाहती थी; परंतु यह कोई साधारण मुकदमा नहीं था, जिसे सरलता से दबाया जा सकता। इस मुकदमे की लोकप्रियता इतनी बढ़ चुकी थी कि देश की सीमाएँ लाँघकर यह विदेशों तक जा पहुँची थी। जिस दिन अदालत में अभियुक्त उपस्थित होते, अंदर का कक्ष खचाखच भरा होता। दरवाजे से लेकर सड़क तक लोग उनकी एक झलक पाने के लिए घंटों प्रतीक्षा करते। सरकार को डर था कि मुकदमे के दौरान विपरीत निर्णय से लोग भड़क सकते हैं। इसके लिए ठोस उपाय करना आवश्यक था।

12 सितंबर, 1929 को ब्रिटिश सरकार ने केंद्रीय असेंबली में एक बिल प्रस्तुत किया। इसके अंतर्गत न्यायाधीशों को अभियुक्तों की अनुपस्थिति में भी मुकदमा जारी रखने का अधिकार दिया गया था। इसके पीछे सरकार का उद्देश्य अभियुक्तों को अदालत में लाए बिना ही जल्द-से-जल्द मुकदमे को समाप्त करना था। वह नहीं चाहती थी कि इस मुकदमे की लौ भयंकर अग्नि का रूप ले ले।

असेंबली में विरोधी दल के नेता पं. मोतीलाल नेहरू थे। उन्होंने इस बिल पर सरकार के साथ बहुत गरमागरम बहस की। उनके अकाट्य तर्कों को काटना सरकार के वश में नहीं था। प्रतिपक्ष के तीखे तेवरों को देखते हुए चार दिन बाद ही सरकार ने इस बिल को लोकमत के लिए प्रसारित कर दिया। परंतु साथ में यह भी प्रचारित कर दिया कि आवश्यकता पड़ने पर सरकार अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकती है। सारा देश समझ चुका था कि सरकार किसी भी कीमत पर इस बिल को पास करके ही दम लेगी।

जैसाकि सबको विदित था, 1 मई, 1930 को विशेषाधिकारों का प्रयोग करते हुए तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड इरविन ने 'लाहौर षड्यंत्र केस ऑर्डीनेंस' नामक एक आदेश पारित किया। इसके अंतर्गत तीन जजोंवाले एक विशेष

ट्रिब्यूनल की नियुक्ति की गई। इस विशेष ट्रिब्यूनल का गठन पंजाब हाई कोर्ट ने किया था। इसके अध्यक्ष जस्टिस जे. कोल्डस्ट्रीम थे, जबकि जस्टिस आगा हैदर और जी.सी. हिल्टन इसके सदस्य थे।

ट्रिब्यूनल को अधिकार दिया गया कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में, बचाव पक्ष के वकील की अनुपस्थिति में, बचाव पक्ष के गवाहों की अनुपस्थिति में या सरकारी गवाहों से बहस किए बिना ही इस मुकदमे में एकपक्षीय निर्णय दिया जा सकता है।

भगतसिंह की दृष्टि में इस ट्रिब्यूनल की स्थापना गैर-कानूनी थी, अत: उन्होंने उसके बहिष्कार का निश्चय कर लिया। लेकिन कुछ साथी उनके इस निर्णय से सहमत नहीं थे। उनके विचार में अदालत में जाकर अपने विचारों का जन-जन में प्रचार करना अधिक उपयुक्त था। यद्यपि दूरदर्शी भगतसिंह नई परिस्थितियों के अनुसार नई विचारधारा के अनुगामी थे, तथापि साथियों की बात मानते हुए उन्होंने अदालत में जाना स्वीकार कर लिया।

## अत्याचार की पुनरावृत्ति

5 मई, 1930 को लाहौर षड्यंत्र की सुनवाई पुन: आरंभ हुई। अभी तक मुकदमा सेंट्रल जेल के साथ वाली अदालत में चल रहा था। लेकिन अब पुंच में अदालत बनाई गई और अभियुक्तों को वहीं ले जाया जाने लगा। पिछली अदालत की कार्रवाई पत्रों में प्रकाशित होकर कैदियों को जनसमुदाय में लोकप्रिय बनाने तथा उनके लिए समर्थन जुटाने में सहायक रही– यही सोचकर सरकार ने अदालत की कार्रवाई के प्रकाशन पर रोक लगा दी।

सरकार की ओर से एम.सी.एच. कार्डननोड मुकदमे की पैरवी कर रहे थे। उन्होंने अभियुक्तों पर तीन आरोप निर्धारित किए–

- षड्यंत्र और हत्या।
- डकैती तथा बमों का निर्माण।
- बमों के प्रयोग तथा अन्य तरीकों से ब्रिटिश सम्राट् के विरुद्ध युद्ध।

अभियुक्तों की ओर से कोई भी वकील नहीं था, अत: ट्रिब्यूनल ने प्रत्येक अभियुक्त से कहा, ''यदि आप चाहें तो सरकार अपने खर्चे पर बचाव पक्ष के लिए वकील दे सकती है।''

ऐसे में कानूनी कार्रवाई पर नजर रखने तथा बहस के दौरान सलाह लेने

के लिए भगतसिंह ने लाला दुनीचंद को अपना कानूनी सलाहकार बनाना स्वीकार कर लिया।

12 मई, 1930 को सभी अभियुक्त देशभक्ति के गीत गाते हुए तथा 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे लगाते हुए अदालत में उपस्थित हुए। अंग्रेज जजों ने जब इनका अंग्रेजी अनुवाद सुना तो वे क्रोध से तमतमा उठे। उन्होंने अभियुक्तों को चुप रहने के लिए कहा। लेकिन आजादी के इन मतवालों को किसी की परवाह नहीं थी। वे अपनी धुन में मस्त होकर प्रसिद्ध क्रांति-कवि ओमप्रकाश की निम्न पंक्तियाँ गाने लगे–

"वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहाँ होगा!
इलाही वह भी दिन होगा सब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमाँ होगा!"

सहसा चीफ जस्टिस कोल्डस्ट्रीम चिढ़ उठे। उन्होंने पुलिस को आदेश दिया कि अभियुक्तों को चुप करवाया जाए। और एक बार फिर पूर्व में की गई पाशविकता की पुनरावृत्ति की गई। भरी अदालत में सिपाही लात-घूँसों और डंडों से अभियुक्तों को मारने लगे। इस अन्याय और अत्याचार को देखकर जस्टिस आगा हैदर व्यथित होकर बाहर जाने के लिए कुरसी से उठ गए। उनका बाहर जाना ट्रिब्यूनल के मुँह पर कालिख पोत देता। इसलिए कोल्डस्ट्रीम द्वारा की गई व्यक्तिगत प्रार्थना पर वे पुन: अपने स्थान पर बैठ गए। लेकिन उन्होंने अपना चेहरा यह कहते हुए अखबार के पीछे छिपा लिया कि "कम-से-कम खुदा से मैं यह तो कह सकूँगा कि हाँ, अन्याय तो हुआ था, लेकिन मैंने अपनी आँखों से नहीं देखा।"

उस दिन की कार्रवाई स्थगित कर दी गई। कोल्डस्ट्रीम ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि "अभियुक्तों के दुर्व्यवहार के कारण फैसला कल तक के लिए स्थगित कर दिया गया, अदालत खाली हो गई और अभियुक्त हटा दिए गए।"

लेकिन जस्टिस आगा हैदर ने इस पर असहमति व्यक्त करते हुए अपनी टिप्पणी लिखी–"मैं अभियुक्तों को अदालत से जेल भेजने के आदेश का भागीदार नहीं था और जो कुछ आज यहाँ हुआ, उससे भी मैं स्वयं को असंबद्ध करता हूँ।"

जस्टिस आगा हैदर की यह निष्पक्ष टिप्पणी भारतीय इतिहास में उन्हें

सम्माननीय स्थान दे गई। इसका सबसे अधिक लाभ भगतसिंह को हुआ। जो साथी अभी तक अदालत के बहिष्कार के लिए सहमत नहीं थे, वे भी अब उनसे सहमत हो गए थे। इसके फलस्वरूप 13 मई, 1930 के बाद अभियुक्त अदालत नहीं गए।

सरकार इस मामले को शीघ्र समाप्त करना चाहती थी। इसलिए उसने पुराने ट्रिब्यूनल को समाप्त करके नए ट्रिब्यूनल का गठन किया। इसमें जस्टिस कोल्डस्ट्रीम और आगा हैदर के स्थान पर दो नए सदस्यों जस्टिस जे.के. कैंप और जस्टिस अब्दुल कादिर को सम्मिलित किया गया। जस्टिस जी.सी. हिल्टन अपने पद पर पूर्ववत् बने रहे।

अभियुक्तों के बहिष्कार के चलते ट्रिब्यूनल ने एकतरफा कार्रवाई आरंभ कर दी। 26 अगस्त, 1930 को तीन महीने तक चली इस कार्रवाई का पटाक्षेप हो गया। ट्रिब्यूनल का काम समाप्त हो चुका था; निर्णय सुरक्षित था। फिर भी कागजी औपचारिकताएँ पूरी करने के लिए ट्रिब्यूनल ने अभियुक्तों को अपना पक्ष स्पष्ट करने के लिए अदालत में आने को कहा; परंतु भगतसिंह और उनके साथियों ने अपनी सफाई देने से इनकार कर दिया।

## भाई के नाम पत्र

अदालती कार्रवाई समाप्त होने के साथ ही भगतसिंह समझ गए कि शीघ्र ही ट्रिब्यूनल अपना निर्णय सुनाने वाला है। इस निर्णय में उनके लिए क्या दंड निर्धारित किया गया है, इसका भी उन्हें भान हो गया था। अत: उन्होंने अपने छोटे भाई करतार सिंह को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने भावी अंदेशे को प्रकट किया था। इस पत्र के अनुसार–

> ''भाई कुलबीर सिंह,
>
> सतश्री अकाल!
>
> आपको मालूम ही होगा कि ऊँचे अफसरों के आदेश से मेरी मुलाकातें बंद कर दी गई हैं। अंदरीन हालात फिलहाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा खयाल है कि जल्दी ही फैसला सुना दिया जाएगा। इसके चंद रोज बाद किसी दूसरी जेल को चालान हो जाएगा। इसलिए किसी दिन जेल में आकर मेरी किताबें व अन्य सामान ले जाना। मैं बरतन, कपड़े, किताबें, अन्य कागजात जेल के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट के दफ्तर भेज दूँगा, आकर ले जाना। नामालूम मुझे बार-बार यह खयाल क्यों आ रहा है कि

इसी हफ्ते के अंदर-अंदर ज्यादा-से-ज्यादा इसी माह में फैसला और चालान हो जाएगा। इन हालात में अब तो किसी दूसरी जेल में मुलाकात हो तो हो, यहाँ तो उम्मीद नहीं है।

वकील को भेज सको तो भेजना। मैं प्रिवी कौंसिल के सिलसिले में जरूरी बात दरयाफ्त करना चाहता हूँ। वालिदा साहिबा को तसल्ली देना, घबराएँ नहीं।

— भगतसिंह

सेंट्रल जेल, लाहौर

25 सितंबर, 1930''

इसी बीच भगतसिंह की माता विद्यावती ने उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। कुलबीर सिंह स्वयं उन्हें साथ लेकर जेल आए। लेकिन सरकार का आदेश था कि अभियुक्तों से किसी को मिलने न दिया जाए। इसलिए जेल अधीक्षक ने उन्हें भगतसिंह से मिलने नहीं दिया। भगतसिंह को जब यह बात पता चली तो वे बहुत दु:खी हुए और भाई को एक पत्र लिखा—

''मुझे बड़ा अफसोस हुआ। आप आए और मुलाकात न हो सकी। आखिर तुम्हें तो मालूम हो ही चुका था कि जेलवाले मुलाकात की इजाजत नहीं देते। फिर वालदा को क्यों साथ लाए? मैं जानता हूँ कि वो इस वक्त सख्त घबराई हुई हैं, मगर इस घबराहट और परेशानी का क्या फायदा? जब से मुझे मालूम हुआ कि वे बहुत रो रही हैं, मुझे खुद बेचैनी हो रही है। घबराने की कोई बात नहीं और इससे कुछ हासिल भी नहीं। सब हौसले से हालात का मुकाबला करें। आखिर दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फँसे हुए हैं और फिर अगर लगातार एक साल मुलाकातें कर तृप्ति नहीं हुई तो दो-चार और मुलाकातों से भी तसल्ली न हो सकेगी। मेरा खयाल है कि फैसला और चालान के बाद मुलाकातें खुल जाएँगी; लेकिन अगर फर्ज किया जाए कि फिर भी मुलाकात की इजाजत न मिले तो घबराने का क्या फायदा?

— भगतसिंह''

## पिता को पत्र

सरदार किशनसिंह समझ चुके थे कि सरकार के इशारों पर अदालती

कार्रवाई करनेवाली ट्रिब्यूनल भगतसिंह को अवश्य फाँसी की सजा देगी। वृद्ध अवस्था में जवान पुत्र की मृत्यु की कल्पना ने उन्हें विचलित कर दिया। यद्यपि वे स्वयं सच्चे देशभक्त थे, लेकिन पुत्र-प्रेम ने उनके मन को उद्वेलित कर दिया। भगतसिंह को बचाने के लिए उन्होंने अपने स्तर पर प्रयास आरंभ किया। उन्होंने वायसराय को एक पत्र लिखा। जिसमें उन्होंने दावा किया था कि जिस दिन सांडर्स की हत्या हुई, उस दिन भगतसिंह लाहौर में नहीं बल्कि कलकत्ता में थे। उन्होंने वहाँ से खद्दर भंडार परीमहल के मैनेजर श्यामलाल को एक पत्र भी लिखा था।

इधर भगतसिंह को जब यह बात मालूम हुई तो वे तिलमिला उठे। उन्होंने उसी समय पिता को एक पत्र लिखा। उस पत्र के कुछ मार्मिक एवं महत्त्वपूर्ण अंश निम्नलिखित हैं–

''पूज्य पिताजी महाराज!

वंदे मातरम्!

मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आपने स्पेशल ट्रिब्यूनल को मेरे बचाव के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा है। यह समाचार इतना दु:खदायी था कि मैं इसे शांत होकर सहन नहीं कर सकता।

आपका बेटा होने वे नाते मैं आपकी पितृतुल्य भावनाओं एवं इच्छाओं का पूरा सम्मान करता हूँ; परंतु इसके साथ ही मैं यह समझता हूँ कि आपको मुझसे सलाह किए बिना मेरे बारे में प्रार्थना-पत्र देने का कोई हक नहीं था।

मुझे विश्वास है कि आपको यह बात याद होगी कि आप शुरू से ही मुझे यह बात समझाने की कोशिश करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा समझदारी से लड़ूँ और अपना बचाव सही तरह से प्रस्तुत करूँ। मेरी यह मान्यता रही है कि समस्त राजनीतिक कार्यकर्ताओं को ऐसी स्थिति में अदालत की अवहेलना करनी चाहिए और उसके प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करनी चाहिए तथा बदले में जो कठोर सजा मिले, उसे हँसते-हँसते सहन करना चाहिए।

आप जानते हैं कि हम इस मुकदमे में एक विशेष नीति पर चल रहे हैं। मेरा प्रत्येक कदम उस नीति, मेरे नियमों तथा कार्यक्रमों के अनुकूल होना चाहिए था। इस मुकदमे के दौरान मेरे सामने मात्र एक विचार था और वह था मेरे विरुद्ध अपराधों की गंभीर प्रकृति के प्रति उपेक्षा भाव दिखाना। मेरा हमेशा यही दृष्टिकोण रहा है कि राजनीतिक कार्यकर्ताओं

को निर्लिप्त रहना चाहिए तथा कभी भी अदालतों में कानूनी लड़ाई संबंधी कोई चिंता नहीं करनी चाहिए। वे स्वयं अपना बचाव पेश कर सकते हैं; परंतु सदैव शुद्ध राजनीतिक धरातल पर, न कि व्यक्तिगत दृष्टिकोण से। इस मुकदमे में हमारी नीति हमेशा इस सिद्धांत के अनुकूल रही है। भले ही हम इसमें सफल रहें या न रहें, यह निर्णय मैं नहीं दे सकता। हम अपना धर्म पूरी तरह निस्स्वार्थ भावना से निभाते चले आ रहे हैं।

लाहौर षड्यंत्र केस अधिनियम के सहायक वक्तव्य में वायसराय ने यह कहा था कि अपराधी इस मुकदमे में कानून तथा न्याय– दोनों का अपमान कर रहे हैं। इस स्थिति ने हमें यह अवसर प्रदान किया है कि जनता को दिखा सकें कि हम कानून का अपमान कर रहे हैं। इस पहलू पर लोग हमारे साथ असहमत हो सकते हैं। आप उनमें से एक हो सकते हैं। परंतु इसका कभी यह अर्थ नहीं हुआ कि आप मेरी इच्छा या मेरी जानकारी के बिना मेरी ओर से इस प्रकार का कदम उठाएँ। मेरा जीवन इतना मूल्यवान् नहीं है जितना आप समझते हैं। क्योंकि मैं अपने जीवन का महत्त्व नहीं समझता हूँ कि उसे अमूल्य सिद्धांतों की बलि देकर बचाया जाए। मेरे और भी साथी हैं, जिनका मुकदमा मेरे मुकदमे के समान ही गंभीर है। हम एक संयुक्त नीति अपनाए खड़े रहेंगे, भले ही हमें निजी तौर पर इसका कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।

पिताजी, मुझे बड़ी चिंता अनुभव हो रही है। मुझे भय है कि आप पर दोष लगाते हुए या इससे अधिक इस कार्य की निंदा करते हुए मैं कहीं सभ्यता की सीमाओं का अतिक्रमण न कर जाऊँ और मेरे शब्द अधिक कठोर न हो जाएँ। फिर भी, मैं स्पष्ट शब्दों में इतनी बात अवश्य कहूँगा कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति मेरे प्रति ऐसा व्यवहार करता तो मैं उसे देशद्रोही से कम नहीं समझता; परंतु आपकी परिस्थिति में मैं यह बात नहीं कह सकता।

बस, इतना ही कहूँगा कि यह एक कमजोरी थी, जो निम्न कोटि की मानसिक दुर्बलता थी। यह एक ऐसा समय था, जब हम सबकी परीक्षा हो रही थी। पिताजी, मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप उस परीक्षा में असफल हो रहे हैं। मैं जानता हूँ कि आपने समस्त जीवन भारत माता की स्वतंत्रता के लिए न्योछावर किया है; परंतु इस महत्त्वपूर्ण घड़ी में आपने

ऐसी दुर्बलता क्यों दिखाई, मैं यह बात समझ नहीं पाया।

अंततः मैं आपको, अपने मित्रों तथा उन सबको जो मेरे मुकदमे में रुचि रखते थे, सूचित करना चाहता हूँ कि मैं आप द्वारा उठाए गए कदम को स्वीकार नहीं कर सकता। मैं अब भी अपनी सफाई पेश करने के पक्ष में नहीं हूँ, भले ही अदालत मेरे साथी अभियुक्तों द्वारा दिए गए किसी भी प्रार्थना-पत्र को स्वीकार कर लेती है, तब भी मैं अपना बचाव नहीं करूँगा।

मैं चाहता हूँ कि लोग इस विषय से पूरे विस्तार से परिचित हों, इसलिए मैं इस पत्र के प्रकाशन के लिए निवेदन करता हूँ।

भगतसिंह''

इस पत्र द्वारा सरदार किशनसिंह को अपनी गलती का अहसास हो गया। तदनंतर भगतसिंह की इच्छानुसार उन्होंने यह पत्र हिंदी, उर्दू व अंग्रेजी भाषा के अनेक समाचार-पत्रों में प्रकाशित करने के लिए भेज दिया।

□

अध्याय 16

# मृत्युदंड

5 अक्टूबर, 1930 की रात; कारागार के वातावरण में काफी चहल-पहल थी। कारागार की मोटी-मोटी मजबूत रूखी दीवारों और फौलादी सीखचों को कभी न देखा हुआ अत्यंत मनोहारी दृश्य आज दिखाई दे रहा था। इसलिए कैदियों की वीरान आँखों में चेतना उत्पन्न हो गई थी। गंभीर चेहरों पर मुसकराहट खिल गई थी। होंठों पर लगे निर्दय, बेरहम ताले मानो खुल गए और ईश्वर की प्रसन्नता-निधि प्रकट हुई थी। कैदी और अधिकारियों के मिले-जुले हास-परिहास में वे अवचेतन जड़ वस्तुएँ भी चेतन बनकर उनमें सम्मिलित हो गई थीं।

आज लाहौर षड्यंत्र के अभियुक्त सामूहिक रूप से अंतिम भोजन कर रहे थे। इस अवसर पर जेल के कुछ अधिकारी भी वहाँ उपस्थित थे। आखिरकार वह जेल का खाना था, रसदार व्यंजन थोड़े ही हो सकते थे! लेकिन थाली में पड़ी मोटी-मोटी रोटियाँ और खट्टी-तीखी दाल का स्वाद बेमिसाल बन गया था। गपशप का रंग जमा हुआ था। पुरानी यादें दोहराई जा रही थीं। बीच-बीच में अधिकारियों के साथ भी मजाक कर लिया जाता।

लेकिन अधिकारी तो गंभीर प्रतीत हो रहे थे। उन्हें यह हँसी-मजाक बरदाश्त नहीं हो रहा था। अब तक उन्हें चोर-डाकुओं के साथ रहने की आदत हो गई थी। लेकिन ये कैदी कुछ और ही तरह के थे। उन पर खून का आरोप था, लूट का आरोप था। फिर भी उनका व्यवहार सभ्य और खानदानी युवकों की तरह था। स्वभाव से जिद्दी होते हुए भी उनकी यह जिद स्वार्थ से परिपूर्ण नहीं थी। वे अपने लिए नहीं बल्कि संपूर्ण देश के लिए संघर्ष कर रहे थे। यह संघर्ष उनसे मार-पीट करनेवाले, उन्हें यातनाएँ देनेवाले तथा उन पर कहर ढानेवाले जेल अधिकारियों के लिए भी था। यही सोचकर कुछ अधिकारियों की आँखों में आँसू उमड़ आए थे। अगले दिन जेल के चारों ओर पहरा कड़ा कर दिया गया।

## ट्रिब्यूनल का फैसला

7 अक्टूबर, 1930; सुबह-सवेरे ही ट्रिब्यूनल का एक संदेशवाहक जेल में आ गया था। अभियुक्त फैसला सुनने के लिए अदालत नहीं गए थे, इसलिए वह आदमी फैसला सुनाने के लिए आया था। उसने गंभीरता के साथ 68 पृष्ठों के फैसले को सुनाना आरंभ किया, ''लाहौर षड्यंत्र के प्रमुख अभियुक्तों सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी की सजा।''

एक पल के लिए उपस्थित लोग स्तब्ध रह गए। परंतु भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के चेहरों पर मुसकराहट खेल रही थी। उन्हें पहले से ही इसका आभास हो चुका था। 'इनकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाते हुए वे एक-दूसरे के गले मिलने लगे। उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। उनका मृत्यु-पर्व सफल हो गया था।

''कमलनाथ तिवारी, विजयकुमार सिन्हा, जयदेव कपूर, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, किशोरीलाल और महावीर सिंह को आजीवन कालेपानी अर्थात् उम्रकैद की सजा। कुंदनलाल को सात साल और प्रेमदत्त को तीन साल की कैद। मास्टर आशाराम, अजय घोष, सुरेंद्रनाथ पांडे, देशराज और जितेंद्रनाथ सान्याल को अपराध साबित न होने के कारण मुक्त किया जा रहा है।'' संदेशवाहक ने अपनी बात पूरी की।

मुक्ति की खबर सुनकर वे उदास हो गए और ईर्ष्या में भरकर 'जीवन्मुक्त' होनेवाले भाग्यवानों को देखने लगे। उसी दिन तीनों वीरों को 14 नंबर की कोठरियों में स्थानांतरित कर दिया गया। इन कोठरियों में उन कैदियों को रखा जाता था, जिन्हें फाँसी की सजा दी जाती थी।

यद्यपि सरकार ने इस रिपोर्ट को गुप्त रखने का प्रयास किया था, लेकिन कुछ ही देर में यह समाचार देश भर में फैल गया। स्थिति की गंभीरता देखते हुए लाहौर में धारा 144 लगा दी गई। आम सभाओं, जुलूस आदि प्रतिबंधित कर दिए गए। जगह-जगह पर सैन्य बल तैनात कर दिया गया।

इतना पुख्ता इंतजाम होने के बावजूद 8 अक्तूबर को संपूर्ण भारतवर्ष गरज उठा। हजारों युवक-युवतियाँ स्वेच्छा से गिरफ्तार हुए। सरकार और जनता में खुलेआम युद्ध छिड़ गया। पुणे, कलकत्ता, बंबई, मद्रास, नागपुर, दिल्ली, पटना, लखनऊ— विभिन्न स्थानों, गाँवों, शहरों में दु:खी जनता ने आम सभाएँ कर सरकार की भरपूर भर्त्सना की।

## बटुकेश्वर को पत्र

सांडर्स हत्याकांड में बटुकेश्वर दत्त की भूमिका नगण्य थी, अत: मुकदमा आरंभ से पूर्व ही उन्हें अलग कर दिया गया; परंतु असेंबली में बम फेंकने तथा क्रांतिकारी गतिविधियों में उनकी संलिप्तता को देखते हुए उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी गई थी। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी; उनके हिस्से में केवल आजीवन कारावास– देशभक्त बटुकेश्वर दत्त को यह बहुत अपमान की बात प्रतीत हो रही थी। मन-ही-मन वे बहुत दु:खी थे।

उन दिनों बटुकेश्वर दत्त मुल्तान जेल में थे। उनकी मनोदशा के बारे में जानकर भगतसिंह ने नवंबर में उन्हें एक पत्र लिखा–

''मुझे दंड सुना दिया गया है और फाँसी का आदेश हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अतिरिक्त फाँसी की प्रतीक्षा करनेवाले बहुत से अपराधी हैं। ये लोग यही प्रार्थना कर रहे हैं कि किसी तरह फाँसी से बच जाएँ; परंतु उनके बीच शायद मैं ही एक ऐसा आदमी हूँ, जो बड़ी बेताबी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब मुझे अपने आदर्श के लिए फाँसी के फंदे पर झूलने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं इस खुशी के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़कर दुनिया को दिखा दूँगा कि क्रांतिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से बलिदान दे सकते हैं।

मुझे फाँसी का दंड मिला है, किंतु तुम्हें आजीवन कारावास का दंड मिला है। तुम जीवित रहोगे और तुम्हें जीवित रहकर दुनिया को दिखाना है कि क्रांतिकारी अपने आदर्शों के लिए मर ही नहीं सकते बल्कि जीवित रहकर हर मुसीबत का मुकाबला भी कर सकते हैं। मृत्यु सांसारिक कठिनाइयों से मुक्ति प्राप्त करने का साधन नहीं बननी चाहिए, बल्कि जो क्रांतिकारी संयोगवश फाँसी के फंदे से बच गए हैं, उन्हें जीवित रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न केवल अपने आदर्शों के लिए फाँसी पर चढ़ सकते हैं, बल्कि जेलों की अंधकारपूर्ण छोटी कोठरियों में घुल-घुलकर निकृष्टतम दर्जे के अत्याचारों को सहन भी कर सकते हैं।''

## प्रिवी कौंसिल में अपील

सरकार द्वारा गठित ट्रिब्यूनल ने अपना निर्णय सुना दिया था; लेकिन बचाव पक्ष इस निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील करने का निश्चय कर चुका था। यद्यपि भगतसिंह इसके पक्ष में नहीं थे। लेकिन बाद में बैरिस्टर प्राणनाथ मेहता ने उन्हें इसके विषय में काफी कुछ समझाया। तब भगतसिंह की

विचारधारा में परिवर्तन हुआ। प्रिवी कौंसिल ब्रिटिश साम्राज्य की सबसे बड़ी अदालत थी। उसमें अपील करके विश्व भर में भारतीय क्रांति के उद्देश्यों को प्रचारित करने का अच्छा अवसर मिल सकता था। कैदियों पर होनेवाले अमानुषिक अत्याचार, शहीदों की शहादत तथा अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जनाक्रोश को दुनिया भर के विचारक जान-समझ सकेंगे। लेकिन भगतसिंह को भय भी था कि कहीं प्रिवी कौंसिल बचाव पक्ष की दलीलों को मानते हुए उनकी फाँसी की सजा को आजीवन कारावास में न बदल दे। अंततः उन्होंने प्रिवी कौंसिल में अपील की। साथ ही उन्होंने एक याचना पत्र भी लिखा। पत्र के अनुसार–

''महोदय,

सविनय निवेदन है कि भारत की ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वायसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके लाहौर-षड्यंत्र अभियोग की सुनवाई के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण को स्थापित किया, जिसने 7 अक्तूबर, 1930 को हमें फाँसी का दंड सुनाया।

हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा अभियोग यह लगाया गया है कि हमने सम्राट् जॉर्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध किया है। न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं; प्रथम यह कि अंग्रेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है। दूसरा यह कि हमने निश्चित रूप से उस युद्ध में भाग लिया है। अतः हम राजकीय युद्धबंदी हैं। यद्यपि इसकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया, तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि ऐसा करके हमें सम्मानित किया गया है।

हमारे विचारानुसार प्रत्यक्ष रूप से ऐसी कोई लड़ाई नहीं छिड़ी है और हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का क्या आशय है! हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार बनाए रखेंगे, चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति, अंग्रेज शासक या सर्वथा भारतीय ही क्यों न हों।

उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट मचा रखी है। यदि भारतीय पूँजीपतियों द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो, तब भी इस स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय

समाज के मुखियाओं पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाए, कुछ सुविधाएँ मिल जाएँ अथवा समझौता हो जाए, उससे भी स्थिति नहीं बदल सकती। जनता पर इन बातों का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

इन सब बातों की भी हमें चिंता नहीं है कि एक बार फिर युवकों को धोखा दिया गया है और इस बात का भी नहीं है कि हमारे नेता, राजनीतिक लोग पथभ्रष्ट हो गए हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध, बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गए हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से 'क्रांतिकारी पार्टी' का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनेता तो उन्हें अपना शत्रु समझते हैं; क्योंकि उनके विचार में वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सबकुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने बलिवेदी पर अपने पतियों को भेंट किया। उन्होंने अपने आपको भी न्योछावर कर दिया; परंतु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेंट भले ही झूठी कहानियाँ बनाकर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की ख्याति को हानि पहुँचाने का प्रयास करें, परंतु यह युद्ध तो चलता रहेगा।

हो सकता है कि यह युद्ध भिन्न-भिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। कभी युद्ध प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दिशाओं में चलता रहे; कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर जारी रहे और कभी यह युद्ध इतना भयानक हो जाए कि जीवन-मरण की बाजी लग जाए।

चाहे कोई भी स्थिति हो, इसका प्रभाव तो आप पर भी पड़ेगा। यह आपकी इच्छा है कि आप जिस भी परिस्थिति को चाहें, चुन लें; परंतु यह युद्ध चलता रहेगा। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। बहुत संभव है कि यह युद्ध भयंकर स्वरूप ग्रहण कर ले। यह तब तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि समाज का वर्तमान ढाँचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक व्यवस्था में परिवर्तन या क्रांति नहीं हो जाती और सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

निकट भविष्य में यह युद्ध अंतिम रूप से लड़ा जाएगा और तब यह दिखने लगेगा कि साम्राज्यवाद और पूँजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं।

यही वह युद्ध है, जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया है। हम इसके लिए अपने आप पर गर्व करते हैं।

हमारी सेवाएँ इतिहास के उस अध्याय के लिए मानी जाएँगी, जिसे भगवतीचरण और यतींद्रनाथ दास के बलिदानों ने विशेष रूप से प्रकाशमान कर दिया है। इनके बलिदान महान् हैं।

जहाँ तक हमारे भाग्य का संबंध है, हम बलपूर्वक आपसे यह कहना चाहते हैं कि आपने हमें फाँसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेंगे ही।

आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है, परंतु इस प्रकार आप 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला ही सिद्धांत अपना रहे हैं और उस पर अटल हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना की बात नहीं करते।

हम आपसे केवल यही प्रार्थना करते चाहते हैं कि आपकी सरकार के एक न्यायालय द्वारा हमारे प्रति युद्धबंदियों जैसा ही व्यवहार किया जाए। हमें फाँसी देने के बजाय गोलियों से उड़ा दिया जाए।

अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपको उस निर्णय में विश्वास है, जो आपकी सरकार के ही एक न्यायालय ने दिया है। आप अपनी कार्रवाई द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम आपसे विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप अपने सेना विभाग को आदेश दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक दस्ता भेजा जाए।

— भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु''

जैसा कि उम्मीद थी, इस पत्र के बाद प्रिवी कौंसिल ने उनकी अपील अस्वीकार कर दी।

## गांधी-इरविन समझौता

4 मार्च, 1931 की रात को महात्मा गांधी और भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड इरविन में एक समझौता हुआ। इसे गांधी-इरविन समझौते के नाम से भी जाना जाता है। इसमें अनेक प्रस्तावों के साथ-साथ जेल में बंद सत्याग्रहियों को छोड़ने का प्रस्ताव भी सम्मिलित था। इसमें स्पष्ट कहा गया था कि 'केवल वे कैदी छोड़े जाएँगे, जो सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधों के लिए कैद भोग रहे होंगे, जिनमें नाममात्र की हिंसा को छोड़कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।'

5 मार्च, 1931 को शाम के समय एक पत्रकार-सम्मेलन में गांधीजी ने स्पष्ट किया कि ''व्यक्तिगत रूप से उन लोगों को, जो हिंसा के दोषी हैं, जेल में भेजे जाने की प्रणाली पर मेरा विश्वास नहीं है। मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेंगे कि न्यायपूर्वक उनकी रिहाई के लिए नहीं कह सकता था। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मुझे अथवा कार्यकारिणी के सदस्यों को उनका खयाल नहीं है।''

जनसमुदाय बड़े दिनों से इस समझौते की प्रतीक्षा कर रहा था। उन्हें विश्वास था कि इसके अंतर्गत भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को जेल से मुक्त करने की बात अवश्य होगी। लेकिन दुर्भाग्यवश उनका इस प्रस्ताव में कोई उल्लेख नहीं था। इससे जनता में गहरी निराशा व्याप्त हो गई।

□

अध्याय 17

# मुश्ते-खाक

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की अपील अस्वीकृत हो चुकी थी तथा उन्हें फाँसी मिलना निश्चित था। कानूनन फाँसी से कुछ दिन पूर्व ही कैदियों की मुलाकातें बंद कर दी जाती थीं। अत: 3 मार्च, 1931 को सरदार किशनसिंह परिवार सहित अंतिम बार उनसे मिलने आए। पूर्व में हुई मुलाकातों की अपेक्षा इस बार की मुलाकात बिलकुल अलग थी। जहाँ पहले उम्मीद, विश्वास और उत्साह का भाव अधिक होता था, वहीं इस बार की मुलाकात निराशा, दु:ख और निस्तेजता से भरी हुई थी। आज के बाद इस जीवन में भगतसिंह से फिर कभी मुलाकात नहीं होगी, उनका परिवार यह बात भली-भाँति समझ चुका था। यह अंतिम मिलन की घड़ी थी, एक-दूसरे को अलविदा कहने की घड़ी थी। इसलिए इस बार किशनसिंह के साथ सरदार अर्जुनसिंह, दादी जयकौर, माता विद्यावती, अमरकौर, कुलबीर, चाचियाँ– सभी आए थे। जिस भागोंवाले को सीने से लगाकर पाला था, जिसकी एक आवाज पर सब दौड़े चले आते थे, जिसकी शरारतों को हँसते हुए सहा था, जिसकी शादी के अनेक स्वप्न सँजोए थे, वही भगतसिंह जीवन की राह में उनका साथ छोड़कर सदा-सदा के लिए मुक्ति-मार्ग की ओर अग्रसर होने वाला था।

सरदार अर्जुनसिंह आज बहुत व्याकुल और दु:खी थे। भगतसिंह के जन्म के साथ ही उन्होंने सोच लिया था कि वे उसके कंधों पर चढ़कर ही श्मशान जाएँगे; उनका प्रिय पोता ही उन्हें मुखाग्नि देगा। लेकिन विधाता ने उनके जीवन में इतना क्रूरतम दिन लिखा था, इसकी उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। जिस युवक ने अभी खुशियों के रंग तक नहीं देखे थे, उसकी आँखें सदा के लिए मुँदने वाली थीं– यह सोचकर ही उनकी आँखों में आँसू छलकने लगे थे।

भगतसिंह प्रेम भरे स्वर में बोला, ''दादाजी, आप इस तरह आँसू बहाकर

मेरे मन को कमजोर मत कीजिए। बचपन में आपने ही मुझे सत्य और न्याय के मार्ग पर चलने की शिक्षा दी थी। एक बार आपने कहा था कि अन्याय को सहने वाला अन्याय करनेवाले से बड़ा दोषी होता है। मैंने जीवन भर इसी बात का पालन करते हुए सदैव अन्याय का विरोध किया। आज मुझे गर्व है कि मैं आपका पोता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मेरा मार्गदर्शन कर मेरे जीवन को सार्थक बनाया। दादाजी, मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं जीवन के अंतिम क्षणों तक इसी प्रकार सत्य-मार्ग पर अडिग रहूँ।''

सरदार अर्जुनसिंह ने काँपते हाथों से भगतसिंह के सिर पर हाथ फेरा। आँखों में आँसू की लड़ियों को सँजोए वे कुछ कहने को हुए। लेकिन गला अवरुद्ध हो गया और वे एक ओर हट गए।

उनकी यह दशा देखकर भगतसिंह ने माँ विद्यावती से कहा, ''बेबेजी, दादाजी बूढ़े हो गए हैं। अब आप लोग इनके पास बंगा में जाकर ही रहना। इन्हें कभी अकेला मत छोड़ना।''

''भगत, तुम जैसे भागोंवाले को जन्म देकर मेरी कोख धन्य हो गई। अपने कर्मों से तुमने मुझे भी दुनिया में सम्मान के योग्य बना दिया। मैं वाहेगुरु से प्रार्थना करती हूँ कि मुझे हर जन्म में बेटे के रूप में भगतसिंह ही मिले।'' विद्यावती ने भर्राए स्वर में कहा।

कहीं उनके आँसू देखकर अंतिम समय में भगतसिंह का मन दुःखी न हो जाए, यह सोचकर वह वीरांगना दृढ़ स्वर में बोलीं, ''भगत, जीवन के अंतिम क्षण तक अपने निर्णय पर अडिग रहना। इस दुनिया में जिसने जन्म लिया है, उसे एक दिन मरना ही है, लेकिन मृत्यु वही श्रेष्ठ है जिसे सारी दुनिया देखे। जिसकी मृत्यु पर सब रो उठें, उसका मरना ही सफल है। मुझे गर्व है कि तुम देश के लिए अपने प्राण न्योछावर कर रहे हो। मेरी यही इच्छा है कि फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर तुम इतनी तेज आवाज में 'इनकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाओ, जिससे सोए हुए देशवासियों की नींद टूट जाए। वे एकजुट होकर तुम्हारे अधूरे छोड़े गए कार्य को पूर्ण करें।''

भगतसिंह ने माँ के हाथ को स्पर्श करते हुए कहा, ''बेबेजी, आप अपने पुत्र पर विश्वास रखिए। वह इतनी वीरता से मृत्यु का वरण करेगा कि सदियों से सोया हुआ देश का अभिमान पुनः जाग्रत् हो जाएगा। मैं इस दुनिया से चला जाऊँगा, लेकिन मेरी मौत देश में एक नई क्रांति को जन्म देगी। मैं फिर जन्म लूँगा और तब तक बार-बार जन्म लेता रहूँगा, जब तक कि मेरा देश, मेरे

देशवासी गुलामी की बेड़ियों से आजाद होकर खुली हवा में साँस नहीं लेते। मेरा बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। मेरी मौत से लाखों भगतसिंह उठ खड़े होंगे और फिर वह दिन दूर नहीं रहेगा जब ब्रिटिश सरकार को यहाँ से जाना होगा।''

तदनंतर वे पिता से बोले, ''पिताजी, मैंने आपको बहुत दुःख दिए हैं। कई बार आपकी बातों को अनसुना कर अपने मन के अनुसार चला हूँ, क्योंकि मेरे लिए परिवार से बढ़कर मेरा देश है। मेरी रगों में देशभक्ति का वही खून दौड़ रहा है जो दादाजी, आप में और चाचाजी की रगों में है। मैंने वही किया जो हमारे परिवार की परंपरा रही। फिर भी, मैं आपसे अपनी उद्दंडता के लिए क्षमा माँगता हूँ।''

''भगत, मुझे कोई शिकायत नहीं है। मैं ही पुत्र-मोह में अंधा होकर गलत राह पर चल निकला था। लेकिन तुमने सत्य का दर्पण दिखाकर मुझे विनाश की ओर बढ़ने से रोक लिया। मुझे गर्व है कि तुम मेरे बेटे हो।'' यह कहकर सरदार किशनसिंह ने भगतसिंह के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया।

इसके बाद भगतसिंह ने चाचियों और भाई-बहनों से बात की।

इसी बीच मुलाकात का समय समाप्त हो गया। सभी ने एक बार फिर भरपूर निगाहों से भगतसिंह को देखा और दुःखों का बोझ उठाए हुए वहाँ से चले गए।

## अंतिम पत्र

परिवार मिलकर जा चुका था, लेकिन भगतसिंह अभी भी बेचैन थे। छोटे भाई कुलतार को रोते देखकर उनका मन विचलित हो गया था। उन्होंने उसी रात उसे अपने जीवन का अंतिम पत्र लिखा-

''प्रिय कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत दुःख हुआ। आज तुम्हारी बातों में बड़ा दर्द था। तुम्हारे आँसू मुझसे सहन नहीं होते। बरखुरदार, हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का खयाल रखना। हौसला रखना। और क्या कहूँ...

'उसे यह फिक्र है हरदम, नया तर्जे जफा क्या है?
हमें यह शौक देखें सितम की इंतेहा क्या है?
दहर से क्यों खफा रहें, चर्ख का क्यों गिला करें।

सारा जहाँ अदू सही, आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमान हूँ ए अहले महफिल
चरागे सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।
मेरी हवाओं में रहेगी ख्यालों की बिजली
यह मुश्त-ए-खाक हूँ, रहे, रहे न रहे।'

अच्छा, रुखसत। 'खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।' हौसले से रहना।

— भगतसिंह''

## आजादी से इनकार

''सरदारजी!'' उसने दबे स्वर में पुकारा।

लेकिन भगतसिंह पढ़ने में इतनी तल्लीनता से खोए हुए थे कि उन्हें पुकारनेवाले की आवाज सुनाई नहीं दी।

''सरदारजी!'' उसने थोड़े ऊँचे स्वर में पुकारा।

''कौन है?'' आँखों को नीचे रखते हुए ही भगतसिंह ने पूछा।

''मैं 14 नंबर का संदेश लाया हूँ।''

किताब को एक ओर रखते हुए भगतसिंह ने आश्चर्य से पूछा, ''कैसा संदेश?''

उस आदमी ने कुछ भी न कहते हुए एक चिट्ठी आगे बढ़ा दी।

भगतसिंह ने पल भर में चिट्ठी पढ़ डाली और प्रश्न भरी मुद्रा से संदेशवाहक की ओर देखा।

''जवाब लिख दीजिएगा। तत्काल सब प्रबंध हो जाएगा।'' संदेशवाहक दबे स्वर में बोला।

चिट्ठी में लिखा था—''सरदारजी, आप एक सच्चे इनकलाबी की हैसियत से बताएँ कि क्या आप चाहते हैं कि आपको बचा लिया जाए? इस आखिरी वक्त भी शायद कुछ किया जा सकता है।''

रिहाई की कल्पना से पल भर के लिए भगतसिंह का मन पुलकित हो उठा। अभी बहुत कुछ करना था, समाजवाद के सपनों को साकार करना था।

मौत ने अगर जीवन प्रदान किया तो वे मातृभूमि की सेवा कर सकते थे। लेकिन दूसरे ही क्षण उनकी मुद्रा गंभीर हो गई। मौत का मूल्य उन्होंने महसूस किया और जवाब लिखने लगे–

> ''मैं इनकार नहीं करता कि एक इनसान की हैसियत से मुझे जीने के प्रति मोह है। लेकिन इस क्षण मेरे जीवन के बदले मेरी मौत का मूल्य अधिक है। मेरा नाम हिंदुस्तानी इनकलाबी पार्टी का निशान बन चुका है और पार्टी के आदर्शों तथा बलिदानों ने मुझे बहुत ऊँचा कर दिया है। इतना ऊँचा कि जिंदा रहने की सूरत में इससे ऊँचा मैं हरगिज नहीं हो सकता।
>
> मुझसे ज्यादा भाग्यशाली कौन होगा? मुझे आज अपने आप पर बहुत गर्व है। मेरी अब कोई अभिलाषा बाकी नहीं है। अब तो बड़ी बेताबी से आखिरी परीक्षा का इंतजार है। आरजू है कि वह और करीब हो जाए।
>
> आपका साथी
>
> – भगतसिंह''

□

अध्याय 18

# बलिदान

24 मार्च, 1931 को प्रातःकाल भगतसिंह और उनके साथियों को फाँसी दी जानी थी। लेकिन सरकार एक नई योजना का ताना-बाना बुन रही थी। अब तक भगतसिंह संपूर्ण देश के आदर्श बन चुके थे। विभिन्न स्थानों पर आंदोलनों एवं जुलूस द्वारा उनकी रिहाई की माँग की जा रही थी। अनेक दलों ने जेल को घेरने की घोषणा भी कर दी थी। सरकार को भय था कि इससे विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यदि लोगों की भीड़ ने जेल को घेरकर हिंसात्मक प्रतिरोध किया तो भगतसिंह और उनके साथियों को फाँसी देना तो दूर, उनकी जान भी आफत में आ जाएगी। इसलिए नियम-कानूनों को एक ओर रखते हुए उन्होंने एक दिन पूर्व ही उन्हें फाँसी देने का निर्णय ले लिया। इस बारे में जेल के अधिकारियों को भी आनन-फानन में सूचना दी गई।

23 मार्च, 1931; सोमवार। सुबह से ही भगतसिंह लेनिन से संबंधित पुस्तक पढ़ने में मग्न थे। आज उनके जीवन का अंतिम दिन था, इसलिए वे जल्द-से-जल्द इस पुस्तक को समाप्त कर लेना चाहते थे। सहसा 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारों से जेल का प्रांगण गूँज उठा।

"अरे, इस समय साथी कैसे लौट आए?" भगतसिंह ने आश्चर्य के साथ कहा। अभी दोपहर पूरी तरह से ढली नहीं थी। इस समय सब बंदी कारागार के बाहर अपने-अपने काम पर रहा करते थे।

"साम्राज्यवादी मुर्दाबाद।" पुनः नारा सुनाई दिया।

'जरूर कुछ-न-कुछ गड़बड़ है। शाम को बंद होनेवाला कारागार अभी क्यों बंद हो रहा है?' भगतसिंह अभी इसी सोच में डूबे थे कि उसी समय चीफ वॉर्डर सरदार चतरसिंह ने कोठरी में प्रवेश किया।

उसके उदास चेहरे को देखकर भगतसिंह ने हँसते हुए पूछा, ''क्या बात है, भाई?''

''आखिरी समय समीप आ गया है, बेटे।'' चतरसिंह ने भरे गले से कहा।

''फिर तो बड़ी खुशी की बात है। शादी का मुहूर्त कब का है?''

''आज शाम का है।''

भगतसिंह मुसकराते हुए धीरे से बोले, ''तो मिलन की घड़ी नजदीक आ गई है।''

''बेटा, मुझ बूढ़े की एक बात मानोगे? कम-से-कम इस आखिरी वक्त में तो वाहेगुरु का नाम स्मरण कीजिए। गुरुवाणी का पाठ कीजिए। लीजिए, मैं आपके लिए यह गुटका लाया हूँ।'' चतरसिंह ने गुटका आगे कर दिया।

लेकिन उसे लेने के बदले भगतसिंह हाथ जोड़कर बोले, ''आपके मन का भाव मैं समझ सकता हूँ। वास्तव में आपकी इच्छानुसार पाठ करने में कोई हर्ज नहीं है। लेकिन आपको इसके बारे में पहले कहना चाहिए था।''

''पहले कैसे कहता? मुझे तो अभी तीन बजे ही मालूम हुआ कि आज शाम को ही...'' चतरसिंह ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

''पहले मतलब आखिरी घड़ी से पहले। अब अगर ठीक मरते समय मैं भगवान् से प्रार्थना करने लगूँ तो भगवान् कहेगा कि यह आदमी बुजदिल है, डरपोक है। जिंदगी भर तो इसने कभी मेरा स्मरण नहीं किया और अब सामने मौत आकर खड़ी हो गई है, तब यह मेरा नाम सुमिरन कर रहा है। इसकी अपेक्षा तो मैं जिस तरह जीया था, उसी तरह मुझे यहाँ से जाने दीजिए। लोग मुझे नास्तिक जरूर कहेंगे, लेकिन कोई यह नहीं कहेगा कि मरते समय भगतसिंह बुजदिल और बेईमान हो गया; आखिरी वक्त मौत को देखकर उसके पैर लड़खड़ाने लगे थे।''

चतरसिंह निरुत्तर हो गया। उसने मन-ही-मन वाहेगुरु से प्रार्थना की और बाकी का इंतजाम करने चला गया।

## शहादत

अंतिम स्नान करके भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु पुलिस अधिकारी के सामने आकर खड़े हो गए। इन युवकों को मौत के मुँह में जाते देखकर पुलिस अधिकारियों की आँखें भी भर आई थीं। उनका पत्थर दिल भी पसीज गया,

हाथ-पैर काँपने लगे। उन्हें बाँधने के लिए हथकड़ियाँ आगे की गईं तो भगतसिंह मुसकराते हुए बोले, ''क्या आप हमारी आखिरी इच्छा नहीं पूछेंगे?''

''मैं पूछने ही वाला था। बताइए, आपकी आखिरी इच्छा क्या है?'' पुलिस अधिकारी ने भरे स्वर में पूछा।

''हमें न तो हथकड़ियाँ पहनाई जाएँ और न ही फाँसी के समय हमारे चेहरे ढके जाएँ। यही हमारी आखिरी इच्छा है।'' तीनों ने एक स्वर में कहा।

कुछ सोचकर अधिकारी ने हथकड़ियाँ एक ओर कर दीं। तदनंतर तीनों को फाँसी के तख्ते की ओर ले जाया गया। भगतसिंह बीच में थे; बाईं ओर सुखदेव और दाईं ओर राजगुरु थे। तीनों एक-दूसरे के हाथों में हाथ डाले देशभक्ति में डूबा गीत गा रहे थे–

''मेरा रँग दे बसंती चोला।
मेरा रँग दे...

पूरी जेल 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारों से गूँजने लगी। हर कोई तीनों वीरों को अश्रुपूर्ण विदाई दे रहा था। लेकिन इन सबसे बेखबर तीनों मस्ताने एक ही स्वर में गाने लगे–

''दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उल्फत,
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आएगी।''

वार्डन ने आगे बढ़कर फाँसीघर का दरवाजा खोला। तीनों ने हँसते-गुनगुनाते उसमें प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे वार्डर सहित अन्य अधिकारी भी अंदर आ गए। अंदर लाहौर का डिप्टी कमिश्नर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। इन तेजस्वी युवकों को देखकर वह चौंक उठा। उसे समझ में नहीं आया कि उन्हें बिना हथकड़ियों के खुले में कैसे लाया गया है? उसने क्रोध से तमतमाकर जेलर मुहम्मद अकबर की ओर देखा।

उसके मन का भय जानकर जेलर बड़े अदब के साथ बोला, ''साहब, विश्वास रखिए, इनसे किसी को कोई खतरा नहीं।''

यह सुनकर भगतसिंह हँसने लगे और उन्हें आश्वस्त करते हुए बोले, ''मजिस्ट्रेट साहब, आज आप देखेंगे कि भारतीय क्रांतिकारी अपने लक्ष्य के लिए किस तरह हँसते-हँसते मौत को गले लगाते हैं। आप बहुत भाग्यशाली हैं।''

मजिस्ट्रेट फटी आँखों से तीनों मृत्युंजयों की ओर देखते रह गया।

सामने तीन रस्सियाँ लटक रही थीं, जिनके सिरों पर तैयार फंदे उनका इंतजार कर रहे थे। तीनों एक-दूसरे को देखकर मुसकराए और तेजी से तख्त पर चढ़ गए। उनकी फुरती देखते ही बनती थी। ऐसा लगता था मानो विवाह-वेदी पर खड़े वे अपनी-अपनी दुलहन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हों। बीच में भगतसिंह, दाईं ओर राजगुरु और बाईं ओर सुखदेव। तीनों एक स्वर में बोले, ''इनकलाब जिंदाबाद! साम्राज्यशाही मुर्दाबाद!''

तदनंतर उन्होंने सामने लटकते फंदों को चूमा और अपने हाथों से ही उन्हें अपने गले में पहन लिया। उनके पास ही जल्लाद खड़ा था। उसने अब तक अनगिनत लोगों को फाँसी पर लटकाया था। लेकिन इतने वीर और साहसी युवक उसने पहले कभी नहीं देखे थे। भगतसिंह ने प्रेम भरे स्वर में उसे फंदे ठीक करने के लिए कहा। जल्लाद के हाथ काँपने लगे, पैर लड़खड़ाने लगे। छलछलाई आँखों से उसने पहले तीनों वीरों को प्रणाम कर अपने मस्तक पर उनकी पदधूलि का तिलक लगाया, फिर उनके गले के फंदों को ठीक किया। तदनंतर धीरे-धीरे चलता हुआ रस्सी खींचनेवाले चक्र के पास आकर खड़ा हो गया।

7 बजकर 33 मिनट पर मजिस्ट्रेट ने संकेत किया और भरे मन से जल्लाद ने चक्र घुमा दिया। पल भर में तीनों तेजस्वी क्रांतिकारी देश के लिए शहीद हो गए।

□

अध्याय 19

# शहीदों की चिताओं पर

23 मार्च की रात को ही सरदार किशनसिंह परिवार सहित मोरी दरवाजे के पास पहुँच गए थे। उनके साथ सुखदेव और राजगुरु के परिवार भी थे। इसके अतिरिक्त लोगों की विशाल भीड़ थी, जो दरवाजे के आगे जुलूस के रूप में खड़ी थी। वे सब सुबह होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें उम्मीद थी कि फाँसी देने से पहले उन्हें अंतिम दर्शन हेतु तीनों से मिलने दिया जाएगा।

तभी जेल के एक सिपाही ने आकर सरदार किशनसिंह को सूचना दी, ''उन्हें आज शाम सात बजे ही फाँसी दे दी गई है।''

यह सुनकर भगतसिंह की माँ विद्यावती एकाएक चीख उठीं। राजगुरु की माँ ने आँचल का छोर मुँह में ठूँस लिया और सुखदेव की माँ धम्म से नीचे बैठ गईं।

लेकिन उस शहीद का पिता सावधान था। उसने गरजकर बुलंद आवाज में घोषणा की, ''भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी लग जाने की खबर मिली है। मैं खबर पाकर शव लेने जेल जा रहा हूँ।'' उनके पीछे-पीछे लोगों का जुलूस जेल की ओर चल पड़ा। परंतु जेल पहुँचने पर भी उन्हें भगतसिंह का शव नहीं मिला। कई बार पुकारने पर एक जेल अधिकारी ने सूचना दी, ''उनकी लाशें अंतिम संस्कार के लिए ले जाई जा चुकी हैं।''

किशनसिंह विस्मित रह गए। 'उन्हें कहाँ ले गए होंगे? उनका अंतिम संस्कार कौन करेगा?' ऐसे अनगिनत प्रश्न उठे, लेकिन उनके पास एक का भी जवाब नहीं था।

सभी इसी उलझन में थे कि तभी एक आदमी धीरे से बोला, ''सरदारजी, उन्हें बोरियों में ठूँसकर जेल के पिछवाड़े से बाहर ले जाया गया है।''

''बोरियों में?'' किशनसिंह ने चौंककर पूछा।

''जी, उन्हें ट्रक में डालकर यहाँ से ले गए।''

''कहाँ ले गए हैं?''

''फिरोजपुर की ओर।''

किशनसिंह ने तत्काल फिरोजपुर के नेताओं को तार भेजकर सूचित किया और स्वयं परिवार सहित फिरोजपुर की ओर चल दिए।

लाहौर से फिरोजपुर लगभग 70 मील की दूरी पर है। यह खबर मिलते ही कि पुलिस की गाड़ी शहीदों के शव उनके शहर में लाई है, वहाँ के लोग उनके शवों को खोजने लगे।

लगभग आधी रात के समय लोगों की एक भीड़ ने सतलुज नदी के किनारे पर कैसर-ए-हिंद पुल के पास धधकती हुई आग देखी। वे मशालें लेकर उस ओर दौड़ पड़े।

उन्हें आते देखकर पुलिस अधिकारियों ने आग बुझा दी और गाड़ी में बैठकर वहाँ से भाग गए। लोगों ने तत्परता दिखाते हुए उस स्थान को घेर लिया।

दूसरे दिन सूर्योदय के साथ ही लोग पुल के पास उस जगह को ढूँढ़ने लगे, जहाँ शहीदों का संस्कार किया गया था। थोड़ी देर में ही वह पवित्र भूमि मिल गई। उसमें से मिट्टी के तेल की बदबू आ रही थी। आधे-अधूरे बुझे हुए अंगारों के आस-पास मांस के अधजले टुकड़े बिखरे हुए थे। उनके प्राणप्रिय क्रांतिकारियों की इस तरह अवहेलना की गई है, यह देखकर लोग शोकाकुल हो गए।

उसी दिन सरकार ने घोषणा की कि '23 मार्च को भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दे दी गई। बाद में सतलुज के किनारे सिख और हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार उनका अंतिम संस्कार करके राख नदी में बहा दी गई।

सरकार ने शहीदों का नामोनिशान मिटाने का भरसक प्रयत्न किया था, लेकिन वे मरकर भी लोगों के दिलों में सदा के लिए अमर हो गए। लोगों का ताँता लगा हुआ था। कड़ी धूप में भी 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे लगाते हुए वे इस तीर्थ के दर्शन कर रहे थे। फिजाँ में रामप्रसाद बिस्मिल के शब्द गूँज रहे थे–

''कभी वो दिन भी आएगा कि जब आजाद हम होंगे,
यह अपनी ही जमीं होगी यह अपना आसमाँ होगा।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा।।''

## प्रतिक्रियाएँ

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के बलिदान के बारे में सुनकर समूचा राष्ट्र शोकमग्न हो गया। 24 मार्च, 1931 को शोक-दिवस घोषित किया गया। लेकिन सरकार द्वारा शवों की दुर्गति के बारे में सुनकर लोगों में क्रोध की लहर दौड़ गई। देश के कोने-कोने में तनावपूर्ण स्थिति बन गई। जगह-जगह जुलूस निकाले गए, सभाएँ आयोजित की गईं। चारों ओर विद्रोह की भावना बलवती हो उठी। लाहौर में हालात बिगड़ने की आशंका देखते हुए सरकार ने हजारों की तादाद में सिपाही सड़कों पर उतार दिए। धारा 144 लगा दी गई। तदनंतर अंग्रेज अधिकारियों को बिना सुरक्षा लिये घर से बाहर जाने पर रोक लगा दी गई।

शहीदों की चिताओं के कुछ अवशेष लाहौर लाए गए, जहाँ हजारों लोगों ने उनके दर्शन किए। इस शोकपूर्ण घटना का वर्णन करते हुए उर्दू के प्रसिद्ध अखबार 'पयाम' ने लिखा था–

''भगतसिंह, राजगुरु और सुखेदव को फाँसी दे दी गई है। सिर्फ तीन जानें गई हैं, लेकिन उन्हें 23 करोड़ हिंदुस्तानी प्यार करते थे। उनका खून करके ब्रितानवी हुकूमत ने सारे हिंदुस्तान की मर्दानगी को ललकारा है। अगर हिंदुस्तान इस चुनौती को स्वीकार करता है तो इंग्लैंड का भविष्य अँधेरे से भर जाएगा और अगर वह इसे मंजूर नहीं करता तो उसे अपने भविष्य से हाथ धोना पड़ेगा। शहीदों ने हमें शहादत का अनोखा रास्ता दिखाया है और हमें उनके दिखाए रास्ते पर चलना चाहिए। इंग्लैंड ने सारे हिंदुस्तान की इबादत को ठुकरा दिया है। इसका जवाब सिसकियों और अश्कों से नहीं दिया जा सकता; क्योंकि ये कमजोरी के हथियार हैं। ब्रितानवी हुकूमत में दयानत, आदमियत और उदारता नहीं है। यह शैतान हुकूमत है, जो सिर्फ जोर के आगे झुकती है। तुममें ताकत है, इसका सही इस्तेमाल करो। ब्रितानवी हुकूमत, ब्रितानवी तिजारत, ब्रितानवी इल्म का बहिष्कार करो और ब्रितानवी बेइज्जत होकर तुम्हारे कदमों पर गिरेगा और उसे शहीदों के खून की कीमत चुकानी पड़ेगी। भगतसिंह के खून की कीमत इससे कम नहीं है कि हिंदुस्तान आजाद हो, क्योंकि उसके भाइयों ने हिंदुस्तान की आजादी के लिए अपनी जानें दी हैं। जब पूरे आजाद पर्शिया का खून एक आम अंग्रेज के खून की कीमत नहीं चुका सकता, तब गुलाम भारत के फर्जमंद बेटों,

जिन पर पुलिस अफसर के खून का इल्जाम था, के खून को कैसे माफ किया जा सकता है। लेकिन अगर एक आम अंग्रेज की जान इतनी कीमती है तो क्या हिंदुस्तान भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की कीमत कम समझता है, जिनका अंग-अंग देशभक्ति और पाक शहादत से भरा हुआ था। ब्रितानिया को इसका जवाब काम करके दो, अल्फाजों से नहीं। हिंदुस्तान इन तीन शहीदों को पूरे ब्रितानिया से ऊपर समझता है। अगर हम हजारों-लाखों अंग्रेजों को भी मार गिराएँ तो भी हम पूरा बदला नहीं चुका सकते। यह बदला तभी पूरा होगा, जब लोग हिंदुस्तान को आजाद करा लें, तभी ब्रितानिया की शान मिट्टी में मिलेगी। ओ भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव! अंग्रेज खुश हैं कि उन्होंने तुम्हारा खून कर दिया है, लेकिन वो गलती पर हैं। उन्होंने तुम्हारा खून नहीं किया, उन्होंने अपने ही भविष्य में छुरा घोंपा है। तुम जिंदा हो और हमेशा जिंदा रहोगे।''

कुछ इसी तरह की टिप्पणी लाहौर से प्रकाशित होनेवाले 'ट्रिब्यून' ने की-

''भारत में अंग्रेजी सरकार ने जो कुछ गलतियाँ कीं, वे महत्त्व और गंभीरता की दृष्टि से उन गलतियों के समान हैं जो उसने भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के मृत्युदंड को न बदलने में की है।''

भारतीय समाचार-पत्रों के साथ-साथ विदेशी अखबारों ने भी इस घटना की आलोचना करते हुए कठोर लेख लिखे। न्यूयॉर्क के समाचार-पत्र 'डेली वर्कर' ने टिप्पणी की-

''लाहौर के तीन कैदी भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव, जो भारत की आजादी के लिए लड़ रहे थे, अंग्रेजी साम्राज्यवाद के हितों के लिए अंग्रेज सरकार द्वारा खत्म कर दिए गए। मैकडोनल्ड के नेतृत्व में अंग्रेजी सरकार द्वारा की गई यह सबसे पहली खूनी कार्रवाई है। तीन भारतीय क्रांतिकारियों की मृत्यु पूर्व-निश्चित राजनीतिक योजना के अनुसार सरकार की आज्ञा यह स्पष्ट करती है कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद को बचाने के लिए मैकडोनल्ड सरकार कितनी दूर तक जा सकती है।''

□

अध्याय 20

# कुछ संस्मरण

## विद्रोह के अंकुर

भगतसिंह अभी बहुत छोटे थे। उनके एक चाचा बीमारी के कारण युवावस्था में ही काल का ग्रास बन चुके थे, जबकि दूसरे चाचा अजीतसिंह विदेशों में मारे-मारे फिर रहे थे। पिता भी अंग्रेजों के साथ आँख-मिचौली का खेल खेल रहे थे। ऐसी स्थिति में चाचियों का स्नेह-दुलार उन्हें बचपन से ही मिला था। वे अकसर बालक भगत को गोद में लिटाकर देशभक्ति से परिपूर्ण कहानियाँ सुनाया करती थीं। बीच-बीच में कब वे फफककर रो पड़तीं, उन्हें पता भी न चलता। ऐसे ही एक बार कहानी सुनाते-सुनाते अजीतसिंह की पत्नी की आँखों से आँसू निकल आए। भगतसिंह से रहा न गया। वे चाची के आँसू पोंछते हुए बोले, ''चुप हो जाओ चाचीजी! बड़ा होकर मैं अंग्रेजों को इस देश से मारकर भगा दूँगा। फिर हम सब एक साथ मिलकर रहेंगे।''

यही वह समय था, जब बालक भगत के मन में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह के अंकुर फूटने लगे थे।

## बंदूकों की खेती

एक बार सरदार किशनसिंह अपने मित्र मेहता नंदकिशोर के साथ खेतों में गए हुए थे। तभी मेहताजी को एक बालक दिखाई दिया, जो मिट्टी के ढेर पर छोटे-छोटे तिनके लगा रहा था। यह देखकर मेहताजी विस्मित हो गए। उन्होंने आगे बढ़कर बालक से प्रश्न किया, ''तुम्हारा नाम क्या है?''

''भगतसिंह।'' बालक ने निर्भय होकर जवाब दिया।

''तुम यह क्या कर रहे हो?'' मेहताजी ने अगला प्रश्न किया।

''मैं बंदूकें बो रहा हूँ।''

''बंदूकें! लेकिन तुम इन बंदूकों का क्या करोगे?'' मेहताजी ने विस्मित होकर पूछा।

''इससे मैं अपने देश को अंग्रेजों से आजाद करवाऊँगा।'' भगतसिंह ने जोश में भरकर जवाब दिया।

तीन वर्षीय बालक के मुख से ऐसी बातें सुनकर मेहताजी को विश्वास हो गया कि आनेवाले वर्षों में यह बालक देश के नक्षत्र-पटल पर ध्रुव तारा बनकर प्रकाशित होगा।

## प्रतिज्ञा

रावी नदी के चौड़े पाट में नाव तेजी से बह रही थी। भगतसिंह और उनका मित्र यशपाल नौकायन का अभ्यास कर रहे थे। उन्होंने जिस मार्ग को चुना था, उसपर चलने के लिए सबकुछ जानना आवश्यक था। सूर्यबिंब ने अब क्षितिज का स्पर्श किया था। पश्चिम दिशा लाल-केसरिया रंगों से रँग गई थी। रावी का जल भी उस रंग से सरोबार हो गया था। नौकायन करते हुए दोनों मित्रों को बहुत देर हो गई थी। लेकिन वे परस्पर बातों में इतना डूबे हुए थे कि उन्हें कुछ सुध-बुध नहीं थी। सदैव की भाँति उनके बीच बातचीत का विषय 'देशभक्ति और आजादी' थी। दोनों देश की वर्तमान स्थिति की समीक्षा कर रहे थे।

सहसा यशपाल ने अपना चप्पू रोका और विचारों में डूबे भगतसिंह के कंधे पर हाथ रखकर बोला, ''आओ, हम प्रतिज्ञा करें कि हम अपना जीवन देश को समर्पित कर देंगे।''

भगतसिंह मुसकराए। उन्होंने यह निर्णय बारह वर्ष की आयु में ही कर लिया था। यशपाल का हाथ अपने हाथों में लेकर, उसकी आँखों में आँखें डालकर गंभीरता से बोले, ''मैं आज फिर से प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह भगतसिंह सिर्फ देश के लिए जिएगा और देश के लिए ही मरेगा।''

हाथ-में-हाथ लिये दोनों मित्र अभिभूत-से खड़े थे। चप्पू रुक गए थे; नौका खड़ी थी। रावी की लहरें उछल-उछलकर मानो आशीर्वाद दे रही थीं। सूर्य की किरणें सहलाते हुए कह रही थीं, 'तथास्तु! ऐसा ही होगा। हे देश के सच्चे सपूतो! तुम्हारी यह नाशवान् काया देश के लिए प्रज्वलित यज्ञ में समर्पित होगी।'

## साधु की भभूत

बात उन दिनों की है, जब भगतसिंह जेल में थे और उन पर मुकदमा

चल रहा था। बंगा गाँव के बाहर एक साधु ने आकर धूनी लगा ली थी। दो-चार दिनों में ही उसकी शक्तियों की चर्चा गाँव भर में होने लगी। किसी ने विद्यावती से कहा, ''गाँव के बाहर जो साधु ठहरे हुए हैं, वे बड़े शक्तिशाली हैं। उनके पास जाओ; शायद उनकी कृपा से भगतसिंह बच जाए।''

विद्यावती को ऐसी बातों पर अधिक विश्वास नहीं था; लेकिन माँ की ममता ने जोर मारा और वे कुलबीर को साथ लेकर साधु महाराज की शरण में जा पहुँचीं। साधु ने कुछ मंत्र पढ़े। तदनंतर एक पुड़िया में भभूत लपेटकर दी और उसे भगतसिंह के सिर पर डालने के लिए कहा।

जब मुलाकात का दिन आया तो वह भभूत साथ ले गईं और भगतसिंह के पास बैठकर उनके सिर पर हाथ फेरने की कोशिश करने लगीं, जिससे भभूत उनके सिर पर डाली जा सके। अभी उनका हाथ भगतसिंह के कंधों पर ही था कि वे बोल उठे, ''बेबे, जो भभूत तुम मेरे सिर पर डालना चाहती हो, उसे कुलबीर के सिर पर डालिए, जिससे वह जीवन भर आपके पास रहे।''

विद्यावतीजी विस्मित रह गईं। आखिर भगतसिंह उनके मन की बात कैसे जान गया, यह वह कभी समझ नहीं सकीं।

## विश्वासघाती का पश्चात्ताप

भरी अदालत में भगतसिंह उस दिन फूट-फूटकर रो दिए थे जिस दिन हंसराज ने सरकारी गवाह बनकर क्रांतिकारियों के सारे रहस्य खोल दिए थे। क्रांति की एक-एक छिपी कहानी चलचित्र की तरह अदालत में पेश कर दी थी। जाहिर है कि वह बयान अनेक क्रांतिकारियों के लिए मौत का फरमान था। भगतसिंह हंसराज को एकटक देख रहे थे। पहले उनके चेहरे की मांसपेशियों पर खिंचाव आया, क्रोध व आवेश से चेहरा तमतमा उठा, फिर अचानक भावुकता में बहकर वह फफक-फफककर रो पड़े।

तो क्या भगतसिंह अपनी मौत से डर गए थे? जिस व्यक्ति ने खुद अपनी मौत को चुना हो, एक योजनाबद्ध तरीके से फाँसी के फंदे तक पहुँचा हो, वह इतना कायर और कमजोर कभी नहीं हो सकता था। उनकी आँखों से बहते हुए आँसुओं के प्रश्नों का उत्तर संपूर्ण मानवता के इतिहास में देखने को नहीं मिलेगा। उत्तर था 'सरकारी गवाह हंसराज की आँखों में।' वह भी फफककर रो पड़ा; उसकी भी हिचकियाँ बँध गईं।

भगतसिंह रो रहे थे, यह सोचकर कि मेरे साथी पर कितना बर्बरतापूर्वक अत्याचार हुआ होगा। उसे कितनी यातनाएँ दी गई होंगी, जिससे टूटकर आज वह सरकारी गवाह बन गया। हंसराज रो रहा था, लेकिन वे पश्चात्ताप के आँसू थे। 'मैंने विश्वासघात किया। अपने आदरणीय साथी की नजर में पतित होने के बाद भी मैं उसकी सहानुभूति का पात्र हूँ!' यह सोचने के बाद उसकी आँखें बरस पड़ी थीं।

## 'बड़ा आया समझाने'

कैदियों को होनेवाली असुविधाओं के खिलाफ भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने जेल में भूख-हड़ताल आरंभ कर दी थी। उनकी भूख-हड़ताल से प्रेरित होकर कितने ही पुराने क्रांतिकारी और सेनानी भी भूख-हड़ताल पर बैठ गए। उन्हीं में से एक थे बाबा सोहनसिंह। वे सन् 1915-16 से जेल में बंद थे। उन्होंने भी भोजन त्याग दिया। जब तक भगतसिंह को इस बात का पता चलता, तब तक आठ-दस दिन बीत चुके थे। भगतसिंह उन्हें समझाने गए। दो वीरों का मिलन कितना अद्भुत था। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को समझा रही थी कि 'अब हमने मोरचा सँभाल लिया है। आप थक गए हैं, आप आराम करें।' परंतु बाबाजी टस-से-मस न हुए। भगतसिंह ने कई तर्क दिए, विनती की, समझाया कि 'आपकी रिहाई में कुछ ही दिन शेष हैं। भूख-हड़ताल करने से आपकी सजा बढ़ाई जा सकती है।'

बाबाजी ने भगतसिंह की पीठ पर स्नेहपूर्वक धौल जमाई, ''चल, बड़ा आया मुझे समझाने।''

भगतसिंह की आँखों से आँसू बरस पड़े और तब बाबाजी उन्हें समझा रहे थे।

## भावुक भगतसिंह

15 जून, 1929 से भगतसिंह अनशन कर रहे थे। उनके साथ यतींद्रनाथ दास भी अनशन में सम्मिलित हो गए। अनशन अनेक दिनों तक चलता रहा, जिसके कारण यतींद्रनाथ का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराब होने लगा। कुछ ही दिनों में वे हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गए। ऊपर से उन्हें बलपूर्वक खाना खिलाया जा रहा था, लेकिन ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। दिन-पर-दिन बीतते गए और वे मृत्यु के कगार पर खड़े हो गए। जब भगतसिंह उनसे मिलने पहुँचे तो उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। परंतु आँखों की भाषा भला कैसे मौन रहती?

कोमल-हृदयी भगतसिंह उनसे लिपटकर रो पड़े। इससे पहले जब बटुकेश्वर दत्त को उनकी जेल से हटाकर मुल्तान जेल में भेज दिया गया था, तब उन्होंने अपने मन के भाव प्रकट करते हुए बटुकेश्वर दत्त की बहन को एक पत्र लिखा था– ''प्रमिला, बटुकेश्वर की जुदाई मेरे लिए असहनीय है। आज यह पहला दिन है, जब मैं स्वयं को उद्विग्न पा रहा हूँ। आज मेरे आँसू भी मेरी उद्विग्नता कम नहीं कर पा रहे हैं। सचमुच एक मित्र से जुदा होना, जो मेरे लिए सगे भाई से भी बढ़कर था, बहुत दु:खद है।''

उपर्युक्त घटनाओं से वीर भगतसिंह की मानवीय संवेदनाओं का परिचय मिलता है।

## बेबे के हाथ की रोटी

जेलर मुहम्मद अकबर खान ने अपने में जीवन अनेक कैदी देखे थे, लेकिन भगतसिंह जैसा वीर देशभक्त कभी नहीं देखा था। यही कारण था कि अंग्रेज-समर्थक होने के बाद भी वह भगतसिंह का प्रशंसक था। सरकार ने 24 मार्च, 1931 का दिन फाँसी के लिए निर्धारित किया था, अत: वह एक दिन पहले ही 23 मार्च, 1931 को सुबह-सुबह भगतसिंह के पास पहुँच गया और प्रेमपूर्वक बोला, ''भगतसिंह, आपको सरकार के आदेश का पता चल ही गया होगा। अगर आपकी कोई इच्छा हो तो निस्संकोच कहें।''

भगतसिंह सोच में पड़ गए। अचानक कोठरी के पिछले दरवाजे पर दस्तक सुनाई दी। उन्होंने झट से ताली बजाई और हँसते हुए कहा, ''खान साहब, मैं बेबेजी की बनाई हुई रोटी खाना चाहता हूँ।''

''लेकिन आपकी माताजी तो बहुत दूर हैं। उनको संदेश भेजकर रोटी मँगवाना संभव नहीं है।''

भगतसिंह ठहाका लगाकर हँस पड़े और फिर स्वयं को संयत करते हुए बोले, ''कोई बात नहीं खान साहब, मेरी एक बेबे जेल में भी है।''

यह कहकर उन्होंने मेहतर को बुलाया।

कोठरी में जेलर को खड़ा देखकर मेहतर डर गया। परंतु भगतसिंह उसकी ओर संकेत करते हुए जेलर से बोले, ''जेलर साहब, मैं इसके हाथ की बनाई हुई रोटी खाना चाहता हूँ।''

यह सुनकर मेहतर दंग रह गया। तदनंतर डरते-डरते बोला, ''यह पाप मुझसे नहीं हो सकेगा। सरदारजी, मेरे हाथ ऐसे नहीं कि उनसे बनी रोटी आप खाएँ।''

''ऐसा मत कहो, भाई। तुम्हारे हाथ तो मुझे अपनी माँ की याद दिलाते हैं। इसलिए तो मैं तुम्हें बेबेजी कहता हूँ।'' भगतसिंह ने उसके कंधों को प्यार से थपथपाते हुए कहा।

फिर वे जेलर से बोले, ''खान साहब, जीवन में सिर्फ दो लोगों को मेरी गंदगी उठाने का काम मिला है। एक मेरी बचपन की माँ और एक यह जवानी की जमादार माँ।''

''बेबेजी, तुम चिंता मत करो। मेरी यह आखिरी इच्छा है। अच्छी-खासी गरम-गरम रोटी सेंककर लाना और सब्जी कोई भी ले आना। मुझे सब अच्छा लगता है। साथ में चटनी भी लाओ तो कोई हर्ज नहीं। मैं सब खा लूँगा।'' भगतसिंह ने स्नेह भरे स्वर में कहा।

मेहतर की आँखों से आँसू बहने लगे। अब तक किसी ने भी उसे इतना प्यार और सम्मान नहीं दिया था; किसी ने उसके हाथ की बनी रोटी खाने की जिद नहीं की थी। आज उसका जीवन धन्य हो गया था।

□

**अध्याय 21**

# भगतसिंह ने कहा था

''संसार के सभी गरीबों के—चाहे वे किसी भी जाति, वर्ण, धर्म या राष्ट्र के हों—अधिकार समान हैं।''

(1927)

''चारों ओर काफी समझदार लोग नजर आते हैं; लेकिन हरेक को अपनी जिंदगी खुशहाली से बिताने की फिक्र है। तब हम अपने हालात, देश के हालात सुधरने की क्या उम्मीद कर रहे हैं।''

(1927)

''वे लोग, जो महल बनाते हैं और झोंपड़ियों में रहते हैं। वे लोग, जो सुंदर-सुंदर आरामदायक चीजें बनाते हैं, खुद पुरानी और गंदी चटाइयों पर सोते हैं। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? ऐसी स्थितियाँ यदि भूतकाल में रही हैं तो भविष्य में क्यों नहीं बदलाव आना चाहिए? अगर हम चाहते हैं कि देश के हालात आज से अच्छे हों तो ये स्थितियाँ बदलनी होंगी। हमें परिवर्तनकारी होना होगा।''

(अगस्त 1928)

''हमारा देश बहुत आध्यात्मिक है; लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी हिचकते हैं।''

(1928)

''उठो, अछूत कहलानेवाले असली जनसेवको एवं भाइयो, उठो! तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो। सोए हुए शेरो! उठो और बगावत खड़ी कर दो।''

(अछूत समस्या पर, 1928)

''धर्म व्यक्ति का निजी मामला है, इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं, न ही इसे राजनीति में घुसना चाहिए।''

(1927)

''जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है तो किसी भी प्रकार के परिवर्तन से लोग हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और घोर निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रांतिकारी भावना पैदा करने की जरूरत होती है, अन्यथा पतन और बरबादी का वातावरण छा जाता है।''

(मार्च 1931)

''मैं पुरजोर कहता हूँ कि मैं आशाओं और आकांक्षाओं से भरपूर जीवन की समस्त रंगीनियों से ओत-प्रोत हूँ। लेकित वक्त आते पर मैं सबकुछ कुरबान कर दूँगा। सही अर्थों में यही बलिदान है।''

(सुखदेव को पत्र, 13 अप्रैल, 1929)

''जहाँ तक प्यार के नैतिक स्तर का संबंध है, मैं कह सकता हूँ कि नौजवान युवक-युवतियाँ आपस में प्यार कर सकते हैं और वे अपने प्यार के सहारे अपने आवेगों से ऊपर उठ सकते हैं।''

(सुखदेव को पत्र, 1928)

''अंग्रेजों की जड़ें हिल गई हैं और पंद्रह साल में वे यहाँ से चले जाएँगे। बाद में काफी अफरा-तफरी होगी, तब लोगों को मेरी याद आएगी।''

(12 मार्च, 1931)

□

# साभार

- द ट्रायल ऑफ भगतसिंह, ए.जी. नूरानी, ऑक्सफोर्ड इंडिया पेपरबैक
- शहीद भगतसिंह, आर.के. मूर्ति, मैकमिलन
- गांधी एंड भगतसिंह, रूपा एंड कं.
- इनकलाब, मृणालिनी जोशी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
- http://www.funonthenet.in/forums/index.php?topic=99914.0
- http://www.iloveindia.com/indian-heroes/index.html
- मृत्युंजय भगतसिंह, राजशेखर व्यास, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

□□□